श्री

विचारमाला.

साधु श्रीअनाथदासजी विरचित

साधु श्रीगोविंददास कृत टीकासहित

पंडित श्रीपीतांबर विशोधित

सर्व मुमुक्षुके हितार्थ

सा नारायणजी त्रिकमजीनें

श्रीमुंबैमें

जगदीश्वर छापखानेमें छपायके प्रसिद्ध करी.

आवृत्ति दूसरी.

संवत् १९३७

सन १८८०

किंमत रु. ०॥=

दोहा.

अर्धश्लोक करि कहत हूं, कोटि ग्रंथको सार ॥
ब्रह्म सत्य मिथ्या जगत, जीव ब्रह्म निर्धार ॥ १ ॥
ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित्, ताकी वानी वेद ॥
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेदभ्रम छेद ॥ २ ॥

प्रथमावृत्तिकी प्रस्तावना.

सर्वमत शिरोमणि श्रीअद्वैत मत है।सोई मुमुक्षुकूं उपा-
देय है।इसके जाननैं अर्थ श्रीसूत्रभाष्य आदिक अनेक संस्कृ-
त ग्रंथ हैं।तिनमैं अप्रवीणकी प्रवृत्ति होवै नहीं।यातैं परम द-
यालु साधु श्रीअनाथदासजीनैं अष्टम विश्रामके ४० वें दोहेकी
टीकामैं उक्त रीतिसैं स्वमित्र श्रीनरोत्तमपुरीकी सूचनासैं श्री
विचारमाला नामक २५१ दोहा बद्ध भाषा ग्रंथ रच्या है।-
याकी कविता अति उत्कृष्ट है।यह वेदांतके सर्व भाषा ग्रं
थनसैं प्रथम है।इसके हुये वर्ष २१२ भये।यामैं वेदांतके
ग्रंथनका रहस्यरूप गंभीर अर्थ है।सो टीकाविना दुर्ज्ञे-
य है। याकी सविस्तर संस्कृत टीका है औ ८००० श्लोक
की भाषा टीका है।सो मंदमतिमानकूं उपयोगी नहीं,यह
जानिके गंभीर मतिमान् दादूपंथी साधु श्रीगोविंददास
जीने,बावा बनखंडीके शिष्य श्रीहरिप्रसादजीकी इच्छा
सैं,यह बालबोधिनी नाम टीका करी है। यह ग्रंथ प्रथम
त्रिपाठी (गंगायमुना) रूढीसैं लिख्याथा,सो भाषावालों
कूं सुगम होवै नहीं।यातैं पंडित श्रीपीतांबरजीनैं सरल
रूढीसैं लिखवायके औ लिखता दोषतैं भ्रष्ट पदनकूं शु
द्ध करिके प्रेरणा करी,तब परोपकारी संतनके दास सा
नारायणजीनैं मुंबैमैं छपायके प्रसिद्ध किया है। या ग्रंथ-
का विषय,नीचे धरी अनुक्रमणिकामैं स्पष्ट है। दृष्टिदोष
तैं कहूं अशुद्ध होवै तौ सज्जनोनैं सुधारिके वांचना,यह

विनति है।

द्वितीयाऽऽवृत्तिकी प्रस्तावना.

इस आवृत्तिमें मूलग्रंथके वामबाजू प्रसंगनके चढ-ते अंक लगायके तिनके अनुसार विस्तृत मार्गदर्शक अनु-क्रमणिका धरी है। तथा समग्र मूल औ टीकाविषै पदच्छेद कीये हैं। तथा मूल औ टीकाके अक्षरनका भेद कीया है। तथा अवतरण मूल औ टीकाके विभाग (पारिग्राफ) कीये हैं। तथा पूर्णविराम आदिक चिन्ह योग्य स्थलमें धरे हैं। इतनी विलक्षणता करी है।

मालिनी सवैया छंद.

दास अनाथ जु ग्रंथ रच्यो यह नाम विचा
रह मालहि गायो ॥ गोविंद दास जु संत
सुलच्छन ताकर टीक सुठीक बनायो ॥
शुद्ध कियो सुपितांबर पंडित दास नराय
णजी जु छपायो ॥ मुंबइ मांहिं प्रसिद्धि
प्रयोजन सोसत संगि जनो मन भायो ॥१॥

अथ श्रीविचारमालाकी मार्गदर्शक अनुक्रमणिका.

प्रथम विश्रामकी अनुक्रमणिका १

शिष्यकी आशंका १-१४

द्वितीय विश्रामकी अनुक्रमणिका २

सत्संग महिमा १५ – २५

तृतीय विश्रामकी अनुक्रमणिका ३

सप्तज्ञान भूमिका वर्णन २६ – ३७

विषय.	पृ.अंक

चतुर्थ विश्रामकी अनुक्रमणिका ४

ज्ञानसाधन वर्णन ३८ – ६०

पंचम विश्रामकी अनुक्रमणिका ५

जगत्‌की आत्मस्वरूपता ६१-६८

षष्ठ विश्रामकी अनुक्रमणिका ६

जगत्‌का मिथ्यात्व ६९-७४

सप्तम विश्रामकी अनुक्रमणिका ७

शिष्यअनुभव ७५-८२

अष्टम विश्रामकी अनुक्रमणिका ८

आत्मज्ञानीकी स्थिति ८३ – १०५

इति श्री विचारमालाया अनुक्रमणिका
समाप्ता.

ॐ तत्सद्ब्रह्मणेनमः

अथ गोविंददासकृत बालबोधिनी टीकासहित

विचारमाला.

शिष्य आशंका वर्णनं नाम

प्रथमविश्राम प्रारंभः ॥१॥

१ दोहा.

गणपति गिरिपति गोपती, गिरिजा गौरि दिनेश ॥ ईश पंच मम दासके, हरो स्रु पंच क्लेश ॥१॥ ॥५॥

श्रीगुरु दासगोपाल नति, सत सुख परमप्रकाश ॥ जिन पदरज शिर धारकर, सहबिलास तम नाश ॥ २ ॥

श्रीमत् हरिप्रसादजू, चिद्वपु रहि तम्रछेद ॥ विद्याप्रद गुरु तिहि नमो, जिह प्रसाद गत स्वेद ॥३॥ ॥

गुरु जुग पंच मनाइके, थिह धरनिज उपकार ॥ विचारमाल टीका रचूं, बालबोधिनी सार ॥४॥ ॥

२ ननु टीका करणेलगे तो टीकाका लक्षण कहा चाहिये; काहेतें लक्षण अरु प्रमाणकर वस्तुकी सिद्धि होवैहै? तहां सुनोः— वाक्यके पद भिन्न भि

न्न कहणे, औ पदोंके अर्थ कहणे, औ व्याकरण के अनुसार पदोंकी व्युत्पत्ति करणी, औ वाक्यके-पदोंका अन्वय (संबंध) करणा, औ वाक्यके अर्थ मैं शंका होवे ताका समाधान करणा. इन पंचलक्षणवाली टीका कहिये है.। अब ग्रंथके आरंभमें करणीय जो मंगल तिसके प्रयोजन कहेहैं; काहेतें, प्रयोजनबिना मंदबी प्रवर्त्त होवे नहीं:- ग्रंथकी निर्विघ्नसमाप्ति औ श्रेष्ठाचार औ ग्रंथकर्तामें नास्तिक भ्रांतिकी निवृत्ति इत्यादिक मंगलके प्रयोजन हैं. सो मंगल, वस्तुनिर्देशरूप औ आशीर्वादरूप औ नमस्काररूप भेदतें त्रिधा है। सगुण वा निर्गुण परमात्मा वस्तु कहिये है, तिसका निर्देश कहिये कीर्तन वस्तुनिर्देश कहियेहै.। स्व वा शिष्यके वांछितका अपणें इष्टदेवसें प्रार्थन आशीर्वाद कहियेहै। अब तिनमेंसें ग्रंथके प्रयोजनकों दिखावते हुऐ नमस्काररूप मंगल करे हैं:-

दोहा.

नमो नमो श्रीराम जू, सत् चित्-
आनंदरूप ॥ जिहि जाने जग स्व
प्रवत्, नासत भ्रम तम कूप ॥ १॥

टीका:- श्री सहित जो सगुण राम है, ताकेतांई नमस्कार है औ सत् चित् आनंदस्वरूप जो निर्गु-

ण ब्रह्म है, ताकेतांई नमस्कार है। तू शब्दका दे
हलीदीपककी न्याई दोनो ओर संबंध है। सत्य क-
हिये त्रिकाल अबाध्य, चित् कहिये अलुप्त प्रकाश,
आनंद कहिये दुःखसंबंधतें रहित निरतिशय सुख-
रूप, जिसके साक्षात्कारतें अविद्या तत्कार्यरूप-
जगत् निवृत्त होवैहै। दृष्टांतः- जैसें जागृत्के ज्ञा
नतें स्वप्न जगत् निवृत्त होवेहै तद्वत्। काहेतें भ्रमरू
प होणेतें। कैसा जगत् है, तमकूप कहिये अंधकू
पकी न्याई दुःखदाई है। ब्रह्मज्ञानतें अविद्या तत्का-
र्यरूप अनर्थकी निवृत्ति कही, सो परमानंदकी प्राप्ति
सैंविना बनै नहीं, यातें परमानंदकी प्राप्ति अवश्य-
होवैहै; सो ग्रंथका प्रयोजन है ॥ १ ॥

पूर्व कहे अर्थमें शंकापूर्वक उत्तरकाः-

दोहा.

राम मया सत्गुरुदया, साधु संग-
जब होय ॥ तब प्रानी जाने कछू,
रह्यो विषयरस भोय ॥ २ ॥ ॥

टीकाः- वादी शंका करे हैः- कछू कहिये-
तुच्छ जो विषयसुख, तामें रह्यो भोय कहिये आ-
सक्त हुवा जो जीव, सो ब्रह्मकूं कैसें जाने है ? उत्त-
रः- साधु कहिये आगे कहणें हैं लक्षण जिनके, संग
कहिये तिनमें निष्काम प्रीति। राममया कहिये ई-

श्वरके ध्यानकर जो चित्तकी एकाग्रता औ सत् गुरु कहिये यथार्थगुरु, अर्थात् ब्रह्मश्रोत्री ब्रह्मनेष्ठी, तिनकी दया कहिये शिष्यकूं तत्वसाक्षात्कार होवै- इस संकल्पपूर्वक जो महावाक्यका उपदेश, सो जब होवै तब प्राणी कहिये प्राणधारी जीव, जानै कहिये ब्रह्मकों अपना आत्मा जानै है। सो ब्रह्म आत्माका अभेद इस ग्रंथका विषय है। अधिकारी अनुबंध चतुर्थविश्राममें कहेंगे, प्रयोजन अनुबंध प्रथम दोहेमें कहा, इन तीनोके बनणेसें संबंध अनुबंध अर्थतें सिद्ध होवै है ॥ २॥

इस रीतिसें अनुबंध कहकर अब ग्रंथके रचने की प्रतिज्ञा करै हैं:-

दोहा.

पदवंदन आनंदयुत, करि श्री देव
मुरारि ॥ विचारमाल बरनन करूं,
मौनी जू उर धारि ॥ ३॥ ॥

टीकाः- मैं अनाथ दास विचारमाला संज्ञक- ग्रंथकूं रचताहूं, क्या करके,आनंद कहिये सुखस्वरूप तिसकरि युत औ श्री कहिये सत्स्वरूप तिसकरि युत औ देव कहिये प्रकाशरूप निर्गुण ब्रह्मकूं नमस्कार करके। ननु इहां श्री युतशब्दका सत्य अर्थ होवै, तौ, श्रीनाम शोभाका है; तिसवाले आ

विद्यक पदार्थ सत्य कहे चाहिये ? उत्तरः- विद्वान् की दृष्टिमें अविद्या तत्कार्य सर्व असत् है यातें - श्रीयुतपदका सत्ही अर्थ है। औ मुरारि कहिये मुरनाम दैत्यके हंता जो सगुणब्रह्म, ताके चरणोंकूं नमस्कार करके। यद्यपि मुरारि संज्ञा वैकुंठवासी चतुर्भुज मूर्तिकी है तथापि सो मूर्ति सगुणब्रह्मनेंही धारण करी है। जो जिज्ञासु या ग्रंथकूं हृदयमें धारण करे सो मौनी है। वा इस पदका और अर्थ करणाः- मौनी जो हमारे गुरु हैं तिनका हृदेमें स्मरण करके ॥३॥

३ किं मौन? इस प्रश्नका अभिप्राय यह हैः-मौन चार प्रकारका है, बाणीका मौन [१] औ इंद्रियोंका [२] औ मानस [३] चतुर्थ ज्ञानमौन है [४]. तिनमें कौन मौन तुमारे गुरोंनें अंगीकार किया है ? तहां तुरीयपक्ष मानकर कहे हैं:-

दोहा.

यह मैं मम यह नाहि मम, सब विकल्पमें छीन ॥ परमातम पूरन सकल जाने मौनता लीन ॥४॥ ॥

टीकाः- सकल कहिये अन्नमयादि पंचकोशनतें परे जो आत्मा ताकूं पूरन कहिये ब्रह्मरूप जानकर, यह कहिये पंचकोशही मेरा स्वरूप है अथवा

नहीं, यह पंचकोश मम कहिये मेरा दृश्य है वा नहीं; इत्यादि विकल्प कहिये संशयोंकी निवृत्ति रूप मौन; ताकूं अंगीकार किया है। यामें श्रुतिप्रमाण हैः—"तिस परब्रह्मके साक्षात्कार होया इस-पुरुषका हृदयग्रंथि औ सर्व संशय तथा सर्व कर्म निवृत्त होवैं हैं" ॥४॥

४ "जितना काल पुरुष जीवे उतनेकाल गुरु, शास्त्र, ईश्वर, तीनोंकूं वंदना करे" यह शास्त्रमें कह्या है। यातें कृतघ्नताकी निवृत्तिअर्थ गुरोंकी स्तुति करें हैं:—

दोहा.

मात तात भ्राता सुहृद, इष्टदेव नृप प्रान ॥ अनाथ सुगुरु सबतें-अधिक, दान ज्ञान विज्ञान ॥५॥

टीकाः— अनाथदासजी कहे हैंः— परोक्ष प्रत्यक्ष ज्ञानके देणेवाले जो गुरु, सो माता, पिता, भ्राता, सुहृद कहिये प्रतिउपकारकूं न चाहकर उपकार करे, इष्टदेव कहिये अपणे कुलकरके पूज्य देव विशेष, नृप औ अपणे प्राण इन सभनतें अधिक है; काहेतें माता आदि सर्व जन्मद्वारा सातिशय आदि-अनेक दूषण कर दूषित जो विषयसुख ताके देणेवाले हैं औ गुरुज्ञानद्वारा निरतिशय जो मोक्षसुख, तिस-

के देणेवाले हैं. इति भावः ॥५॥

पुन स्तुति कहै हैं:-

दोहा.

प्रगट पुहमि गुरु सूरद्युति, जन मन
नलिन प्रकाश ॥ अनाथ कुमोदनि वि
मुखजन, कबहु नहोत हुलास ॥ ६॥

टीकाः- अनाथदासजी कहै हैं:- सूर्यवत् प्र
काशतेहुए गुरु पृथ्वी तलमें प्रसिद्ध हैं, क्याकरके-
प्रकाशतेहुए? जिज्ञासु जनोके हृदेरूप कमलोंकों अ
पने वचनरूप किरणोकर प्रफुल्लित करते हुए, अन
धिकारी जनरूप जो कुमोदनीयां सो कबी आल्हाद
कूं पावें नहीं। जैसें सूर्यके उदयहुये तें उलूककों प्र
काश होवे नहीं तैसें ॥ ६॥

अब गुरुकृत उपकारकों अन्वय व्यतिरेकद्वारा
दो दोहोंकरि दिखावे हैं:-

दोहा.

टेरत सद्गुरु मयाकरि, मोह नींद सो
वंत ॥ जग्यो ज्ञानलोचन खुले, स्व
पनो भ्रम बिसरंत ॥७॥ ॥

टीकाः- कृपाकर गुरोंके टेरत कहिये तत्व
का उपदेश करतेहीं ज्ञान जग्यो कहिये स्वरूपज्ञान
निरावरण भयो, जो मोह कहिये अज्ञानकरि आवृत-

था; इहां आवृत्त पदका अध्याहार है। यामें गीतावचन प्रमाण है:- "अज्ञानकरि आवृत्त जो स्वरूपज्ञान, तिसकर जीव मोहित होवैहैं." अब इसका फल कहे हैं:- भ्रम विसरंत कहिये अहंकारादि अध्यासकी निवृत्ति होवै है। दृष्टांतः- जैसें निद्रासें उठे पुरुषका नेत्रके खुलणेसें स्वप्न अध्यास निवर्त होवैहै॥७

दोहा.

गुरुबिन भ्रमलग भूसियो, भेद लहे-
बिन स्वान ॥ केहरि बपु झांई निर
खि, पर्यो कूप अज्ञान ॥ ८ ॥ ॥

टीकाः- गुरुकी प्राप्तिसें बिना अद्यपर्यंत भ्रमलग कहिये भ्रमरूप शरीर दोमें अध्यास करके भूस्यो कहिये मैं जन्मता मरता हों, कर्ता भोक्ता-हों, सुखी दुःखी हों, ऐसें अन्यथा बकता भया। दृष्टांतः- जैसें कूकर, शीसमहलमें प्रविष्ट हुवा अपने प्रतिबिंबोकों आपसें भिन्न मानकर भुसें तैसें। अन्य दृष्टांतः- जैसें उन्मत्त सिंह, कूपजलमें अपणें प्रतिबिंबोकों देखके अपणे स्वरूपकूं न जानकर-कूपमें गिरे तैसें ॥ ८ ॥

ननु ऐसे गुरु कहीं परोक्ष होवैंगे ? यह शंकाकर कहैं हैं:-

दोहा.

प्रगट अवनि करुनारनव, रतन ज्ञान
विज्ञान ॥ वचन लहरि तनुपरसतें,
अज्ञो होत स्रुजान ॥९॥ ॥

टीकाः- करुणाके समुद्र गुरु पृथ्वीपर प्रगट हैं। समुद्रकी जो उपमा दई गुरोंकों तामें हेतु कहै हैंः- लहरी स्थानापन्न वचनोका तनु परसतें कहिये श्रोत्रेंद्रियसें संबंध होतें हीं, रत्नस्थानापन्न ज्ञान विज्ञान द्वारा अज्ञो कहिये अज्ञानी जीव ते स्रुजान कहिये परमेश्वररूप होवैहैं ॥९॥

ननु गुरोंकी कृपातेंही ज्ञान प्राप्ति होवै तो वैराग्यादि ज्ञानके साधनोका कथन निष्फल होवैगा? या शंकाके होयां कहै हैंः-

दोहा.

सूर दरस आदरस ज्यों, होत अग्नि
उद्योत ॥ तैसें गुरुप्रसादतें, अनु-
भव निरमल होत ॥१०॥ ॥

टीकाः- दृष्टांतः- जेसें रविके दर्शनतें रविके प्रसादकर आदरस कहिये आतशीशीमेंही अग्नि प्रगट होवैहै, अन्यमें नहीं; तैसें गुरोंकी कृपातें निरमल कहिये संशय विपर्ययरूप मलसें रहित बोध, शिष्यके हृदयमेंही होवैहै, अन्यके नहीं; औ साधन सं

पन्न हीं शिष्य कहा है, यातें साधन निष्फल नहीं॥१०

नतु ऐसें होवें तो गुरु, विषम दृष्टिवान् होवेंगे? या शंकाकों चंद्र दृष्टांतसें दूरि करै है:-

दोहा.

जिमिचंदहि लहि चंद्र मनि, अमी द्र
वत् तत्काल ॥ गुरुमुख निरखत शि
ष्यके, अनुभव होत विसाल ॥ ११ ॥

टीका:- दृष्टांत:- जैसें चंद्रके प्रकाशकों पाइकर चंद्रकांतमणिहीं अमृतकों त्यागे है अन्य नहीं, सो कछू चंद्रमें विषमता नहीं, काहेतें चंद्र, समान-सबकों प्रकाश करै है; तैसें गुरोंके दर्शनतें विसाल-कहिये ब्रह्मबोध शिष्यकोंही होवे है अन्यकों नहीं, सो कछु गुरुमें विषमता नहीं; काहेतें गुरोंका दर्शन सर्वकों समान है ॥ ११ ॥

५ एसे गुरोंकी शरणकूं प्राप्त होइकर शिष्यकों क्या करणीय है? इस आकांक्षाके हायां कहै हैं:-

शिष्य उवाच:-

दोहा.

हौं सरनागत रावरे, श्रीगुरु दीनद
याल ॥ कृपासिंधु वंदूं चरन, हरो
कठिन उरसाल ॥ १२ ॥ ॥

टीका:- हे श्रीगुरो! सर्व ओरतें निरास होकर

मैं दीन आपकी शरणकूं प्राप्त भया हों, जातें आप दीन दयालु हो औ आपके चरणोकूं वंदन करता हूं! औ जातें आप कृपासागर हो, यातें कठिन कहियेपी न जो मेरे हृदेमें साल कहिये दुःख है सो हरो ॥ १२॥

६ अब हृदयगत दुःखके हेतुकूं दिखावता हुवा, शिष्य कहे हैं:—

दोहा.

हों अनाथ अतिसें दुखी, डर्‌यो देखि संसार ॥ बूडत हों भवसिंधुमें, मोहि करो प्रभु पार ॥ १३॥ ॥

टीका:- हे प्रभो ! मैं अनाथ कहिये मेरा कोई रक्षक नहीं, औ अतिशयकर दुःखी हूं। काहेतें, विषयसुखकूं मैनें त्याग्या है औ स्वरूपसुखकों प्राप्त भया नहीं औ जन्म मरणरूप संसारजन्य दुःखका स्मरणकर भयभीत भया हों, ऐसें संसाररूप समुद्रमें डूबता जो मैं हों ता मुजको पार कहिये संसारका पार जो परमेश्वर तहां प्राप्त करो ॥ १३॥

पुनः हेतु अंतरकों दिखावे हैं:-

दोहा.

आसा तृष्णा चिंत बहु, ए डायन घरमांहि ॥ जीवन किहि विध होय मम, हृदे स्मृतीकूं खांहि ॥ १४॥ ॥

टीका:- आशा कहिये वांछित विषयकी निरंतर इच्छा, तृष्णा कहिये विषयकी प्राप्तिसें अतृप्त वृत्ति, चिंता बहु कहिये अप्राप्त विषयके साधनका चिंतनरूप औ प्राप्त विषयकी रक्षाका चिंतनरूप वृत्ति, यह त्रितय वृत्तिरूप जो डायन, अंतःकरणमें एक कालमें एकही वृत्तिकी न्याइ उदय होवे है यातें त्रितयवृत्तिरूप एकडायन कही, याके विद्यमान होयां ममजीवन कहिये मेरी ब्रह्मरूपकरि स्थिति, किस प्रकार होवै ! अर्थात् किसी रीतिसें नहीं होवे, काहेतें स्थितिका साधन जो निरंतर तत्वानुसंधानरूप स्मृति ताकूं खाय कहिये ताकी विरोधी है ॥१४॥

दोहा.

कबहूं सुमति प्रकाश चित, कबहूं कु
मति अधीन ॥ बिबनारीके कंतज्यौं
रहत सदा अति दीन ॥१५॥ ॥

टीका:- दृष्टांत:- जैसें परस्पर विरोधिनी उभय स्त्रियोंकर जीत्या पुरुष निरंतर दुःखी रहता है; तैसें मैंबी चित्त कहिये अंतःकरणमें कदाचित् शुभ-निश्चयरूप वृत्ति औ कदाचित् अशुभ निश्चयरूप वृत्तिनिमैंतादात्म्य अध्यासकर दुःखी रहता हूं ॥१५॥

७ अब शिष्य, स्वनिष्ट आसुरी गुणोंकूं नदीरूपकर वरनन करता हुआ दुःखके हेतुकूं कहे हैं:-

दोहा.

नदि आसा शुभ अशुभ तट, भरी म
नोरथ नीर ॥ तृष्णा अमित तरंग
जिहिं, भरम भमर गंभीर ॥ १६ ॥

टीकाः- पूर्वोक्त आशारूप नदी है, जिसमैं डूब-
ता है औ अविचारपूर्वक शुभाशुभ क्रिया जाके किना
रे हैं; भूत औ भावी पदार्थांकूं विषय करणेवाले म
नोराज्यरूप जलकर पूर्ण है, पूर्वोक्त तृष्णा रूप अमि
त जिसमैं लहरी हैं औ आत्मतत्वके अभाववाले अ
हंकारादिकोमैं आत्मतत्वकी प्रतीतिरूप भ्रम, सोई जा
मैं भमर कहिये आवर्त हैं ॥ १६ ॥

दोहा.

रागादिक जल जंतु बहु, चिंता प्रबल प्र
वाह ॥ धृत तरु हरनी तरन तिहिं,
वेधत मो मन आह ॥ १७ ॥ ॥

टीकाः- जामैं राग कहिये प्रीति औ द्वेषरूप
मत्स्य कूर्मादि जलजीव हैं औ पूर्वउक्त चिंतारूप अ
ति वेगवाली धारा है औ एकांत स्थानमैं विषयकी प्रा
प्तिसैं चित्तकी अविकारितारूप धीरज सोई भया तरु
तिसके हरनेमैं तरुण कहिये समर्थ है, ता नदीनें मेरे
मनकों वेधित कहिये पीडित किया है ॥ १७ ॥

पुनः वही कहै हैं:-

दोहा.

प्रबल जुगल शुभ अशुभ गज, भिरत
क्रूरोस बढाय ॥ अपनी भूल अनाथ
हौं, पर्यो मध्य तिंहिं आय ॥ १८ ॥

टीकाः- दृष्टांतः- जैसैं अति बलवाले दो हस्ती क्रोधपूर्वक परस्पर युद्ध करते होवैं तिनमैं प्रवेशकर पुरुष दुःखकूं अनुभव करै; तैसे अपनी भूल कहिये अपनें ब्रह्मात्मभावकों न जाणकर शुभ अशुभ संकल्पोमैं तादात्म्य अध्यास करिकें हौं अनाथ कहिये मैं दीन भया हों ॥ १८॥

८. अब स्वमनगत चंचलताकूं दुःखका हेतु शिष्य दिखावे हैः-

दोहा.

कबहु न मन थिरता गही, समझायो
सैं पैत ॥ जैसैं मरकट वृच्छपर,
कबी न ठाढो होत ॥ १९॥ ॥

टीकाः- दृष्टांतः- जैसैं बाजीगरकर शिक्षित भयाबी बंदर वृक्षपर आरूढ होकर निष्कंप रहै नहीं; तैसैं पुनः पुनः चित्तकी एकाग्रताका यत्नभी किया तथापि मेरा मन एकाग्रताकों न भजता भया ॥ १९

दोहा.

चलदलपत्र पताकपट, दामनि कच्छ

पमाथ ॥ भूत दीप दीपकसिषा, यों
मनवृत्ति अनाथ ॥ २० ॥ ॥

टीकाः- चलदल नाम पिप्पल वृक्षका है। यह षट् पदार्थ जैसैं स्वभावसैं चंचल हैं तैसैं मेरे चित्तकी वृत्ति स्वभावसैं चंचल है। अन्य स्पष्ट ॥ २० ॥

स्वभावसैं चित्तकी विषयोमें प्रवृत्तिबी दुःखकी हेतु है, या अर्थकों शिष्य दिखावे हैः-

दोहा.

सहज स्वभाय अकासकूं, पावक झरप चलंत ॥ चंचल स्वतः अनादिको,
मन रति विषय करंत ॥ २१ ॥ ॥

टीकाः- जैसैं साथि उत्पन्न होणेवाले स्वभावसैं पावककी झरप कहिये लाट, उर्ध्वकों जावे है; तैसैं स्वरूपसैं अनादि कालका चंचल जो मन, सो भोग्य अभोग्य जो शब्दादि विषय तिनमें स्वभावसैं प्रीति करै है॥ २१

अब चंचलताके हेतु जो संदेह, तिनकों दिखावे हैः-

दोहा.

जग साचो मिथ्या किधों, गृह्यो तज्यो
नहिं जात ॥ गृही चचुंदर सर्प ज्यों,
उगलत बनत नखात ॥ २२ ॥ ॥

टीकाः- जगत् सत्य है वा मिथ्या है? मिथ्या है तौबी आपतें उत्पन्न होवै है वा किसी अन्यकर? अन्य

भी किसी जीवकृत है वा ईश्वरकृत है ? ईश्वरकृत जो होवै तौबी किसीका निवर्त हुवाहै वा नहीं हुवा ? निवर्तबी पुनः प्रतीत होवैहै वा नहीं ? इत्यादि संशयरूप हेतुतें हेय उपादेय रूपकर निश्चित होवै नहीं; यातैंबी क्लेशहीं है। दृष्टांतः- जैसे चचूंदर कहिये दुर्गंधि विशिष्ट मूषक सदृश जीव विशेष, ताकूं सर्प, मुखमैं ग्रहण करके पुनः ग्रहण त्यागमैं अशक्त हुवा दुःखी होवै है तैसें ॥२२॥

१० पूर्व शिष्यनें करे जो प्रश्न, तिनका क्रमसें गुरु समाधान करैं हैं:- श्रीगुरुरुवाच.

दोहा.

समाधान गुरु करत हैं, दयायुक्त क
हि बोल ॥ मम वचनमें आन तूं,
आपत वाक्य अडोल ॥ २३॥ ॥

टीकाः- ग्रंथकार उक्तिः- गुरु, शिष्यके प्रश्नोंका उत्तर कहै हैं, क्या करके, दया दृष्टिपूर्वक वचन कह करके. गुरु उक्तिः- हे शिष्य ! मेरे वचनोमैं तूं विश्वासकर, काहेतें गीतामैं भगवानने कहाहै:- "श्रद्धावान् लभते ज्ञानं" कैसें वाक्य हैं ? आपत वाक्य कहिये वेद वाक्य हैं, काहेतें "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मरूप है यातें ताकी वाणी वेदरूप है औ- किसी प्रतिवादीकर खंडन नहीं हो सकते, यातें अडोल हैं२३

११ पूर्व, शिष्यने कह्या जो मेरा मन चंचल है या शिष्यकी उक्तिका अनुमोदन करते हुये गुरु, चंचलताकी निवृत्तिका उपाय कहै हैं:-

दोहा.

निःसंशय मन है चपल, दुहकर गति
अति आहि ॥ गुरु श्रुतिशुद्ध अभ्या
स कर, निश्चल कीजत ताहि ॥ २४ ॥

टीकाः- हे शिष्य ! तेनें जो कहा मन चंचल है औ अतिशय दुःखके करणेवाली है गति कहिये प्रवृत्ति जिसकी, यामें संदेह नहीं; तथापि गुरुमुखात् श्रुतिशुद्ध कहिये श्रुतिप्रतिपाद्य जीव ब्रह्मका अभेदरूप अर्थ, तिसका श्रवण करके पुनः पुनः चिंतनरूप अभ्यासकर, तिसी अर्थमें तिस चित्तकी स्थिति कर सो मन निश्चल करिये है । इत्यर्थः ॥२४॥

१२ अब सुगम उपायके जाननेकी इच्छा चित्तमें धारकर अभ्यासमें अपनें अनधिकारकों प्रगट करता हुवा शिष्य, प्रार्थना करै हैः- शिष्यउवाच.

दोहा.

हौं विषयी अति अजित मन, नहिन-
होत अभ्यास ॥ तातें प्रभु तुम पद
सरन, हरहु कठिन जग त्रास ॥२५॥

टीकाः- हे प्रभो ! आपनें जो अभ्यास बतायासो

मेरेसें नहीं होता है, काहेतें अभ्यास निर्विषय औ जित चित्त पुरुषसें होवैहै, मैं विषयासक्त औ अति अजित चित्त हूं, तातें आपके चरनोकी शरण हूं, आप सुगम उपाय बतायकर जन्मादि मृत्युपर्यंत जो जगत्‌जन्य दुःखकी स्मृति, तिसतें उत्पन्न भया जो कठिन त्रास कहिये पीनभय, ताके निवृत्तक हो इत्यर्थः ॥२५॥

१३ अब शिष्यकी उक्तिका अनुवाद करतेहुए गुरु, सुगम उपाय कहे हैंः- श्रीगुरुरुवाच.

दोहा.

सुन शिष्य उत्तम सीषकों, जो चाहत निजश्रेय ॥ जग बंधन इच्छित मुच्यो, तौ सतसंग करेय ॥२६॥ ॥

टीकाः- हे शिष्य! जो पुरुष निजश्रेय कहिये- स्वस्वरूप सुखके जानवेकी इच्छा करते हैं औ अविद्या तत्‌कार्य जगत्‌रूप बंधकी मूच्यो इच्छित कहिये निवृत्तिकी इच्छा करे हैं; सो उत्तम सीख कहिये महावाक्यका उपदेश, ताको सुन कहिये श्रवण करके कृतार्थ होवेहैं; औ तूं आपकों यामें असमर्थ देखता है तौ सत्‌संग करेय कहिये सज्जनोका संग कर ॥२६॥

दोहा.

गहै चचूंदर अहि मरे, तजै द्रगनकी हान ॥ जल पायें सुख होत है, नर

सत संग प्रधान ॥ २७ ॥ ॥

१४ ग्रंथकार उक्ति:-

सोरठा.

श्रीगुरु दीन दयाल, असरन सरन
उदार अति ॥ जन अनाथ उरसाल,
कृपाकरत चाहत हर्यो ॥ २८ ॥

टीका:- अनाथदासजी कहे हैं:- जन कहिये शिष्यके हृदेमैं शाल कहिये दुःख ताकूं गुरु कृपाकर-निवृत्त कीया चाहते हैं, काहेतैं दीन पुरुषोमैं दयालु हैं औ अशरण कहिये सर्व ओरतैं निरास जो जिज्ञासु तिनकी शरण कहिये आसरा हैं औ आत्मरूप धनके दाता हैं, यातैं अति उदार हैं ॥ २८ ॥

दोहा.

प्रथम शिष्य संदेह कहि, भयो सु आ
प अदृष्ट ॥ सुख दुःखकर साक्षात्
जिम, होहिं सुदृष्ट अदृष्ट ॥ १ ॥

इति श्रीविचारमालायां शिष्य आशंका वर्णनं नाम प्रथम विश्रामः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ संत महिमा वर्णननाम
द्वितीय विश्राम प्रारंभः ॥ २ ॥

सत्संगकी इच्छावाला हुवा शिष्य संतोके लक्ष

णाकूं पूछे हैः– शिष्यउवाच.

दोहा.

कहो कृपाकरि साधुके, लच्छन श्री
गुरुदेव ॥ जाहि निरखि हित आप-
नो, करों भलीविध सेव ॥१॥ ॥

टीकाः– हे श्रीगुरो! कृपाकरके साधुके लक्ष-
ण कहो, काहेतें जाहि निरख कहिये जिन लक्षणोकों
महात्मोंमें देखकर अपणे हित कहिये कल्याणके अ
र्थ भली प्रकारसें तिनके सेवादि करों ॥१॥

१५ साधु लक्षण वर्णनं. श्रीगुरुरुवाच.

दोहा.

अति कृपालु नहि द्रोह चित, सहनशी
लता सार ॥ सम दम आदि अकाम
मति, मृदुल सर्व उपकार ॥ २॥

टीकाः– अति कृपालु कहिये प्रयोजन बिना कृपा
करे हैं; यातेंही अद्रोहचित्त कहिये चित्तकर किसीसें-
द्वेष नहीं करने। पुनः कैसे हैंः– सहनशील कहिये-
मान अपमानादि द्वंद्वोंके सहारनेवाले हैं, सहनशील-
स्वभावही सार कहिये श्रेष्ठ है यह जाने हैं औ शम-
कहिये मनका निग्रह, दम कहिये चक्षुरादि इंद्रियोंका
निग्रह, आदि पद करके उपरति आदिकोंका ग्रहण कर-
णा, तिनोवाले हैं। ननु शम दम आदि मुक्ति इच्छु मुमु

क्षुके लक्षण कहे हैं, विद्वान्के नहीं? ऐसें मत कहोः-
काहेतें अकाम मति कहिये अंतःकरणमें हेय उपादेयकी
इच्छातें रहित हैं औ मृदुल कहिये कोमल स्वभाव हैं, या
हीतें सर्व उपकार कहिये शरणागतोंका योग क्षेम क
रेहैं। योग क्षेम नाम अप्राप्तकी प्राप्ति औ प्राप्तकी र
क्षाका है ॥२॥

पुनः संत लक्षणं.

दोहा.

आतमवितजु अनीह रूचि, निःकंचन
गंभीर ॥ अप्रमत्त मत्सर रहित, मु
नि तपसांत सुधीर ॥३॥ ॥

टीकाः- आत्मवित् कहिये अन्वयव्यतिरेक युक्ति
कर पंचकोश औ त्रिते शरीरोतें भिन्न, त्रिते अवस्था
का प्रकाशक, चिन्मात्र आत्मा, जिनोनें जान्या है। सो
अन्वय व्यतिरेकरूप युक्ति यह हैः- स्वप्न अवस्थामें -
स्वप्न साक्षीरूपकर जो आत्माका भान सो आत्माका-
अन्वय (मालामें सूतकी न्याई अनुवृत्ति) है, आत्माके
भान भये जो स्थूल देहका अभान सो स्थूलदेहका व्यति
रेक (मणिकेकी न्याई व्यावृत्ति) है, औ सुषुप्तिमें ता-
अवस्थाके साक्षीरूपताकर आत्माकी प्रतीति सो आत्मा
का अन्वय है औ लिंगदेहका अभान सो लिंगदेहका
व्यतिरेक है औ समाधिमें सुखस्वरूपकर जो आत्माका

भान सो आत्माका अन्वय है औ अविद्यारूप कारणदेह की अप्रतीति सो कारणदेहका व्यतिरेक है। यातें त्रिनै शरीरोतें आत्मा भिन्न है। पंचकोश त्रिने शरीरोके अंतर्गत हैं, यातें कोशोतें भिन्न विवेचन नहीं किया। इहां प्रमाणः– "त्रिषु धामस्रु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत् ॥ तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदा शिवः [१] तीन धामरूप तीन अवस्थामें जो भोगके करण हैं औ भोक्ता है औ भोग है, तिननें विलक्षण साक्षी चिन्मात्र सदाशिवमें हूं" पुनः संत कैसे हैं? अनीह कहिये व्यर्थ चेष्टासें रहित हैं, शुचि कहिये अंतरराग द्वेषरूप मलतें रहित हैं औ बाह्य जल मृत्तिकादिकोंकर शुद्ध रहे हैं, निःकंचन कहिये बाह्य संग्रहतें रहित हैं, गंभीर कहिये अन्यकर अज्ञात आशाय हैं, अप्रमत्त कहिये प्रमादसें रहित हैं, मत्सर कहिये बरवीली (ईर्षा) तासें रहित हैं, मुनि कहिये मननशील; तप शांत कहिये शांतिरूपहीं जिनका तप है। इहां प्रमाणः– श्लोक.

"शांतेः समं तपो नास्ति संतोषान्न परं स्रुखं ॥ त्रिष्णाया न परो व्याधिर्न धर्मो दयया परः ॥१॥"

फिर कैसे हैं:– स्रुधीर कहिये स्रुष्टु धैर्यवान् हैं ॥३॥

पुनः यही कहै हैं:–

दोहा.

जित षट्गुन धृति मान कवि, मानद-
आप अमान ॥ सत्यप्रीति अनीतगति,
करुनासील निधान ॥४॥ ॥

टीकाः- षट्गुण कहिये षट् उरमी, तिनोके धृत कहिये धारणेवाले जो देह प्राण मन सो जीते हैं, मान कहिये वेदरूप प्रमाणतामें कवि कहिये तात्पर्य रूपकर सर्व अर्थके जाननेवाले हैं, मानद कहिये व्यवहारदशामें-स्वभिन्न सर्वको मान देवें हैं ओ अपमान नहीं चाहे हैं-ओ सत्यसंभाषणमें निश्चय है काहेतें सत्य मूलक हीं सर्व धर्म हैं ऐसें जाने हैं, मिथ्या संभाषण जिनतें दूर भया है, करुणारूप जो शील कहिये आचार ताके निधान कहिये स्वाणी हैं, काहेतें पामर ओ विषयी ओ जिज्ञासु जो पुरुष, तिन सर्वपर कृपा करें हैं। इति भावः ॥४॥

पुनः वही कहे हैं:-

दोहा.

उस्तुति निंदा मित्र रिपु, स्रुख दुःख ऊ
च रु नीच ॥ ब्रह्मा त्रिन अमृत गरल,
कंचन काच न बीच ॥५॥ ॥

टीकाः- स्तुति कहिये स्वनिष्ट गुणोंका अन्यकर परिकथन तथा स्वनिष्ट अवगुणोका अन्यकर परिकथन रूप निंदा ओ प्रतिउपकार कर्ता मित्र तथा आपणे पर-

अपकार कर्तारूप शत्रु औ पुण्य वशतैं इष्ट पदार्थके सं
बंधकर अंतःकरणके सत्वका परिणाम हर्ष वृत्तिरूप सु
ख तथा प्रतिकूल पदार्थके संबंधकर अंतःकरणके रजो
गुणका परिणाम विक्षिप्तवृत्तिरूप दुःख औ जाति गुण
आयुकर आपणेसें अधिक जो ऊच तथा जातिगुण-
आयुकर आपणेसें नीच, ब्रह्मा औ तृण तथा अमृत
औ विष तथा कंचन औ काच कहिये कच विशेष; इत्या
दिक सर्व पदार्थोंमें यद्यपि लौकिक दृष्टिसें विषमता प्र
तीत होवै है तथापि वे मनकृत होणेतें मिथ्या हैं औ
शास्त्रीय दृष्टिसें सर्व पदार्थोंमें अनात्मत्वतुल्य है औ
ज्ञान निवर्त्यत्व बी तुल्यहीं है ॥५॥

दोहा.

समदर्शी शीतलहृदे, गत उद्वेगउदार
॥ सूछम चित्त स्रुभिन्न जग, चिदव
पु निरहंकार ॥ ६॥ ॥ ॥

टीकाः— यातैं तिनमें महात्मा समदर्शी हैं, इसी
तें शीतल हृदय हैं; गत कहिये निवृत्त भया है उद्वेग
कहिये क्षोभ जिनतें, त्यक्त वस्तुका पुनः ग्रहण करैं न
हीं यातें उदार हैं, सूक्ष्म ब्रह्मकूं विषय करणेतें सूक्ष्म
चित्तवाले हैं। सो श्रुतिनें कहा है:— "दृश्यते त्वग्र्यया
बुध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" अस्यार्थः सूक्ष्मदर्शीयो
नें शास्त्रसंस्कारसहित शुद्ध औ सूक्ष्म बुद्धिकर ब्रह्म दे-

खीता है कहिये निरावर्न करीता है।" औ फिर कैसे हैं? जगत्के सुहृ मित्र हैं काहेतें सर्व प्राणियोमें नि रहेतुक प्रीति करे हैं, औ चिद्रूपु कहिये चेतनहीं है श रीर जिनोका औ देह आदिकोमें परिच्छिन्न अहंकार-तें रहित हैं ॥६॥

पुनः वही कहे हैं.

दोहा.

सर्वमित्र निःकल्पमन, त्यागी अति
संतोष ॥ ऐश्वर्य विज्ञान बल, जान
त बंध रु मोष ॥ ७॥ ॥

टीकाः- सर्वमित्र कहिये सर्व प्राणी जिनके मि त्रहैं काहेतें सर्वका आत्मा होणेतें औ कल्पनातें रहित चित्त हैं औ अति त्यागी हैं काहेतें धन दारा आदिकों का त्याग अति सुगम है औ अनात्मामें आत्म अध्यास का त्याग अति दुष्कर है सो जिनोने कीया हैं यातें औ यथा लाभकर संतुष्ट हैं, अणिमादि सिद्धिरूप ऐश्वर्य-कर संपन्न हैं औ विज्ञानके बलकर इस रीतिसें जाने-हैं:- जैसे अहंकारादिकोकी प्रतीतिरूप बंध आत्मामें मिथ्या है तैसें तिसकी निवृत्तिरूप मोक्षभी मिथ्या है, काहेतें श्रुति कहती है:-"न निरोधो न चोत्पत्तिर्न ब द्धो न च साधकः ॥ न मुमुक्षुर्न वैमुक्त इत्येषा परमा-र्थता॥१॥" अस्यार्थः॥ निरोधनाश, उत्पत्ति देहसंबंध,

बद्ध सुख दुःख धर्मवाला, साधक श्रवणादि करनेवाला, मुमुक्षु साधनचतुष्टय संपन्न, मुक्त अविद्यारहित, ये संपूर्ण वास्तव नहीं हैं"॥७॥

दोहा.

तनु मति गति आनंदमय, गुनातीत निस्पृह ॥ विगत क्लेश स्वच्छंदमति, संतां भूषन एह ॥८॥ ॥

टीकाः- मति गति कहिये बुद्धि वृत्ति तनु कहिये सूक्ष्म है जिनोकी औ आनंदाकार होनेतें आनंदरूप हैं; कैसा आनंद है? सत्वादि तीन गुनोतें परे है, याही तें निष्पृह कहिये अन्य विषयकी इच्छा तें रहित हैं। सो महिम्नमें कहा हैः- "न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति" अपने आत्मामें आरामी पुरुषकूं यह मृगतृष्णाकी न्याई जो शब्दादिक विषय सो भ्रमावें नहीं" औ अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेशरूप पंचक्लेशतें रहित हैं। अविद्या द्विधा हैः- एक कारण अविद्या है अपर कार्य अविद्या है, इहां अविद्या शब्दकर कार्य अविद्याका ग्रहण है; सो चार प्रकारकी हैः- अनित्यमें नित्य बुद्धि, दुःखमें सुख बुद्धि, अशुचिमें शुचि बुद्धि औ अनात्मामें आत्मबुद्धि। अनित्य जो ब्रह्मादि लोक तिनमें नित्यबुद्धि [१] दुःखका साधन होनेतें दुःखरूप जो कृषि वाणिज्यादि तिनमें सुखबुद्धि [२] अशुचि

जो पुत्र स्त्री आदिकोके शरीर तिनमें शुचि बुद्धि [३] अनात्मा जो अपना शरीर तामें मुख्य आत्मबुद्धि [४] यह अविद्या है औ अस्मिता नाम सूक्ष्म अहंकार, राग नाम प्रीति, द्वेष नाम विरोध, अभिनिवेश नाम अति-आग्रह, इन पंचक्लेशनतें रहित हैं। पुनः अकुंठित बुद्धि हैं; अर्थात् तम रजो करके जिनकी बुद्धि रुकती नहीं। अब प्रकरणको समाप्त करते हुए गुरु कहे हैं:- हे शिष्य! पूर्वोक्त लक्षण संतोके भूषण हैं ॥८॥

१६ हे भगवन्! संतोके एतावन्मात्रही लक्षण हैं? या आकांक्षाके भये अन्य भी हैं यह कहे हैं:-

दोहा.

स्वसंवेद्य नहि कहि सकों, लच्छन संत महंत ॥ परसंवेद्य कहे कछू, संग-प्रताप कहंत ॥९॥ ॥ ॥

टीका:- हे शिष्य! महानुभाव जो संत हैं तिनके दो प्रकारके लक्षण हैं:- एक स्वसंवेद्य हैं, अपर परसंवेद्य हैं। अन्य करके जो जानेजावें सो परसंवेद्य कहिये हैं, आपकर जो जाने जावें सो स्वसंवेद्य कहिये हैं। सो कौन हैं? या आकाक्षांके हुए कहे हैं:- मृत्युके समीप स्थित भया भी चित्तमें भय न होवै औ चिद्जडग्रंथि की निवृत्ति औ निरावरण स्वरूपानंदकी उपलब्धि इत्यादिक जो स्वसंवेद्य लक्षण हैं सो हम कही नहीं सकते; शेष

जो परसंवेद्य लक्षण हैं सो स्वल्पसें हमनें कहेहैं। अब स
तूसंगका महात्म्य कहै हैं श्रवणकर ॥९॥
१७ अब विश्रामकी समाप्ति पर्यंत फलकथनद्वारा स
तूसंगका महात्म्य कहै हैं:-

दोहा.

सतूसंगति निजकल्पतरु, सकल काम
ना देत ॥ अमृतरूपी वचनकहि, ति
हूं ताप हरि लेत ॥ १०॥ ॥

टीकाः- वांछित फलप्रद होनेतें सतूसंगही कल्प
वृक्ष है, जातें सकल पुरुष कीयां इस लोकके धन यशा
दि पदार्थकूं विषय करणेवालीयां औ परलोकके स्वर्ग सु
खादिकोंकूं विषय करणेवालीयां सकल कामना पूर्ण करै
है। निष्काम पुरुषके अमृतकी न्याई मधुर वचन कहिक
रि ज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा अध्यात्म अधिभूत अधिदैव ती
न ताप दूर करै है। क्षुधा आदिकतें जो दुःख होवै सो
अध्यात्म कहिये है। चोर व्याघ्र सर्पादिकोतें जो दुःख-
होवै सो अधिभूत कहिये है। यक्ष राक्षस प्रेत ग्रहादि
क औ सीत वात आतपतें जो दुःख होवै सो अधिदैव-
कहिये है ॥ १०॥

दोहा.

पदवंदन तन अघ हरन, तीरथमय प
द दोय ॥ संभाषन चित्त शांतकर, कृ

पा परम पद होय ॥११॥ ॥

टीका:- संतचरनोके तांई जो बंदन सो शरीरनिष्ठ संचित पापनकों हरेहै, काहेतें संत चरणोकूं तीर्थरूप होनेतें; सोई भगवान्नें एकादशमे कहा है:- " सात्विक गुणधारी नरदेहा, सुन्दकरों ता चरनन स्नेहा" पुनः बोलणा जिनका चित्तकूं शांत करे है औ जिनकी कृपासें परमपदकी प्राप्ति होवे है, सोइ कहा है:- " ज्ञानं विना मुक्तिपदं लभते गुर्वनुग्रहात् " ॥११॥

अब शिष्य पूछे हैः- हे भगवन् ! संत संगमें सुख कितनाक है ? तहां गुरु कहे हैः-

दोहा.

सत्संगति सुखसिंधुवर, मुक्ता निजकेवल्य ॥ आशय परम अगाध अति, पैठे मनदल मल्य ॥ १२॥ ॥

टीका:- हे शिष्य ! संत संग सुखका समुद्र है, महात्माका जो आशय कहिये गूढ अभिप्राय है सो तिसमें गंभीरता है, जीतिया है मन जिनोनें सो पुरुष ऐसे समुद्रमें प्रवेश करके केवल्य मोक्षरूप मोतीकूं पावेहें॥१७॥

१८ अब शिष्य पूछे हैः- हे गुरो ! इतने सुख मैंनें वेदमें श्रवण करे हैं:- समग्र पृथ्वी सुखकी चक्रवर्त्ती राजामें समाप्ति है, चक्रवर्तीतें सौगुन अधिक सुख मानव गंधर्वोंका है, तिनतें शतगुणाधिक देव गंधर्वोंका है, तिनतें

शतगुणाधिक पितृदेवनका है, तिनतें शतगुणाधिक सुख आजानदेवनका है, तिनतें शतगुना अधिक कर्मदेवनका है, तिनतें शतगुन अधिक मुख्य देवनका है, तिनतें शतगुण अधिक इंद्रका है, इंद्रतें शतगुण अधिक देवगुरु बृहस्पतिका है, तिसतें शतगुण अधिक प्रजापति-(विराट्) का है, प्रजापतितें शतगुण अधिक सुख ब्रह्मा (हिरण्यगर्भ) का है, तिनतें अपार मोक्ष सुख है। सत्-संगजन्य सुख किस सुखके तुल्य है यह आप कहो? या आकांक्षाके होयां इन संपूर्णतें अधिक है, यह गुरु कहे हैं:-

दोहा.

सत संगति सुख पलक जो, मुक्ति न-
तास समान॥ ब्रह्मादिक इंद्रादि भू,
निपट अल्प ये जान॥१३॥　　॥

टीका:- हे शिष्य! पलमात्र सत् संगजन्य जो सुख है तिसके समान मोक्ष सुख भी नहीं तो ब्रह्मादिकोंका औ इंद्रादिकोंका भी कहिये चक्रवर्तीका सुख तौ अति तुच्छ है, तिसके समान कैसें होवै, ऐसे जान। ननु परतंत्र औ परिच्छिन्न औ कदाचित् होणेवाला ऐसाजो सत् संगजन्य सुख, तिसके समान सर्व वेदांतोकर प्रतिपाद्य निरतिशय मोक्ष सुख नहीं है, यह कथन असंगत है? तहां सुनो:- सफल पदार्थ स्तुतिके योग्य होवै है, निष्फल पदार्थ स्तुतिके योग्य होवै नहीं; मोक्ष-

सें मोक्षांतर होवै नहीं यातें निष्फल है औ सत्‌संगसें-ज्ञानद्वारा अनेकपुरुषोंकूं मोक्ष प्राप्त होवैहै यातें वह स फल है, इस अभिप्रायसें मोक्षतें अधिक कहाहै ॥१३॥

१९ अब शिष्य कहे हैः- हे भगवन् ! जगत् अनर्थ रूप जो.पासी तिसकी निवृत्तिअर्थ अनेककर्मका अनु ष्ठान मैंनें कियाबी है तथापि निवृत्ति न भयी, यातें आ प कोई अन्य उपाय कहो? या आकांक्षाके होयां शिष्य की उक्तिका अनुवाद करते हुये गुरु कहे हैं:-

दोहा.

जगत मोहपासी अजर, कटे न आन उपाय ॥ जो निज सतसंगत करत, स हज मुक्त हो जाय ॥१४॥ ॥

टीकाः- जगत् मोह कहिये अविद्या तत्‌कार्य रूप पासी सो यद्यपि अजर है औ अन्यकर्म उपास नारूप उपायकर निवृत्त नहीं होवैहै तथापि जो पुरुष निरंतर सत्‌संग करता है सो सत्‌संगसें ज्ञानद्वारा अ नायासतें तापासीतें मुक्त होवैहै ॥१४॥

अब शिष्य कहै हैः- सतसंगतें ज्ञानद्वारा मो-क्ष प्राप्त होवै है यह आपने कहा सो मैंने निश्चय-कीया, और धर्मादि जो तीन सो सतसंगसें प्राप्त हो वै हैं वा नहीं यह कहो? तहां गुरु कहे हैं:-

दोहा.

कामधेनु अरु कल्पतरु, जो सेवत
फल होय ॥ सत्संगति छिन एक
मैं, प्रानी पावै सोय ॥ १५ ॥ ॥

टीका:- हे शिष्य। कामधेनु अरु कल्पतरुके चिरकालपर्यंत सेवन कीयेतैं जो धर्म अर्थ कामरूप फल प्राप्त होवै है, सो फल सत्संगमैं प्राप्त जो पुरुष सो एक छिनमैं पावै है ॥ १५ ॥

पुनः शिष्य कहै है:- हे गुरो ! कल्पवृक्ष अरु कामधेनु यद्यपि बहुकाल सेवन कीयेतैं फल देवै हैं, यातैं सत्संगके तुल्य नहीं, परंतु पारसमणि तो तत्काल फलप्रद होनेतैं सत्संगके तुल्य होवैगा? या आक्षेपके भयां कहे हैं:-

दोहा.

पारसमैं अरु संतमैं, बडो अंतरो
जान ॥ वह लोहा कंचन करे, यह
करे आपसमान ॥ १६ ॥ ॥

टीका:- हे शिष्य! पारसमैं अरु संतमैं बडी विषमता है ऐसे जान तूं, काहेतैं वै जो पारस है सो लोहकूं कंचन तो करेहै परंतु पारस नहीं करसके है औ महात्मा जो हैं सो जैसैं आप ब्रह्मरूप हैं तैसैं जिज्ञासुकूं ब्रह्मरूप करे हैं; यातैं पारसतें अधिक हैं ॥ १६ ॥

शिष्य कहे हैं:- हे भगवन्! सत्संगकी प्राप्तिअर्थ जो क्रियाहै ताकरभी कछु फल होवे है। नवा? तहां गुरु कहे हैं:-

दोहा.

विधिवत यज्ञ करत सदा, जे द्विज उत्तम गोत ॥ साध निकट चलि जातहीं, सो फल पग पग होत ॥ १७॥

टीका:- जौनसे पौलस्त्यादि गोत्रवाले उत्तम द्विज कहिये अष्ट वर्षतें पूर्व जिनका यज्ञोपवीतरूप संस्कार भया है ऐसे ब्राह्मण, जो वेदकी आज्ञापूर्वक सदा यज्ञ कहिये नित्याग्निहोत्ररूप यज्ञ करे हैं, तिसका जो फल शास्त्रमें कहा है, सो साधुके समीप गमन करतेहुए एक एक चरण पृथ्वीपर धारणकर होवे है ॥१७॥

दोहा.

दया आदि दे धर्म सब, जप तप संयम दान ॥ जो प्राप्ती इन सबनतें, सो सत्संग प्रमान ॥१८॥ ॥

टीका:- जप कहिये गायत्री औ प्रणवादिकोंका यथाविधि पुनः पुनः उच्चारणरूप, तप कहिये स्वधर्मका अनुष्ठानरूप, संयम कहिये निषिद्ध औ उदासीन क्रियानें कर्मेंद्रियोंका निरोधरूप, दान कहिये प्रतिदिन द्रव्यादिकोंका परित्याग, एतद्रूप सर्व धर्मोंके कीये जो फल प्राप्त हो-

वै है सो सत्संगतें प्राप्त भया जान। काहेतें दया आदि- सर्व धर्मोंकी प्राप्ति सत्संगतें होवै है ॥१८॥

२० अब शिष्य कहे हैं:- हे भगवन्! अंतःकरणकी शुद्धिअर्थ सत्संग भिन्न तीर्थोंका सेवन कर्तव्य है? या आकांक्षाके होयां कहे हैं:-

दोहा.

तीरथ गंगादिक सबै, करि निश्चय सेवै जु ॥ सो केवल सत्‌संगमें, प्रानी फल लेवैजु ॥१९॥ ॥

टीका:- अंतःकरणकी शुद्धिकी इच्छा करके गंगादि तीर्थोंका सेवन कियेसें जो फल प्राप्त होवै है, सो अंतःकरणकी शुद्धिरूप फल सत्संग करणेमात्रसें यह पुरुष पावे है ॥१९॥

२१ हे भगवन्! चित्तकी एकाग्रता अर्थ तो हिरण्यगर्भादि देवनकी उपासना करणीय है? तहां गुरु कहे हैं:-

दोहा.

ब्रह्मादिक देवा सकल, तिन भजि जो फल होत ॥ सत्संगतमें सहजहीं, वे गहिं होत उद्योत ॥२०॥ ॥

टीका:- हिरण्यगर्भसें आदिलेकर देवनकी उपासनातें चित्तकी एकाग्रतारूप फल होवै है, सो चित्तकी एकाग्रतारूप फल सत्संगमें अनायासतें उदय होवै है ॥ २० ॥

२१ पुनः शिष्य कहे है:- ब्रह्म आत्माके अभेदअर्थ बहु विद्याका अध्ययन कर्तव्य है? या शंकाके होयां कहे हैं:-

दोहा.

वेदादिक विद्या सबै, पावै पढ़ै जु को
य ॥ सत्संगनि छिन एक में, होयसु
अनुभव लोय ॥ २१ ॥ ॥

टीकाः- ऋग् यजुर शाम अथर्वणरूप जो वेद हैं, तिनसैं आदिलेकर आयुर्व आदिक चार उपवेद, षट् व्याकर्णादि वेदके अंग, ब्राह्मादि अष्टादश पुराण, न्याय मीमांसा औ धर्मशास्त्र, इन संपूर्णोंके अवलोकन कीयेतैं जो ब्रह्म आत्माका अभेद निश्चयरूप फल होवै है; सो सत्संगकर एक छिनमें पुरुष अनुभव करै है। सोई कहा है:- श्लोक "श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रंथकोटिभिः ॥ ब्रह्म सत्यं जगन् मिथ्या जीवो ब्रह्मैव केवलम्" पुनः यही अर्थ जनक औ अष्टावक्रके संवादकर स्पष्ट कहा है। या श्लोकका अर्थ यह है:- "कोटि ग्रंथोंकर जो ब्रह्मात्माका अभेदरूप अर्थ कहा है सो अर्ध श्लोककर कहता हूं, ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, औ जीव ब्रह्मरूप है" ॥२१॥

२२ अब सत्संगकों सुमेरु अरु कैलासतैं अधिक वर्णन करै हैं:-

दोहा.

किं सुमेरु कैलास किं, सब तरु तरे

रहंत ॥ सत्संगति गिरिमलयसम,
सब तरु मलय करंत ॥२२॥ ॥

टीकाः- जैसें गिरिमलय कहिये सुगंधिवाला पर्वत, अपणेमें स्थित वृक्षोंकूं मलय कहिये सुगंधिवाले करेहै, तैसें संतबी स्वसमीपवर्ती पुरुषोमें स्ववर्ती श्रेष्ठ गुण प्राप्त करेहैं, यातें मलयगिरिके समान हैं। ननु सर्व देवोंका निवासस्थान औ स्वर्णमय मेरु तैसें ही रजत रूप जो कैलास तिनके समान संत, किंउ ना होऐ ? तहां सुनोः- यद्यपि मेरु स्वर्णमय है तथापि क्या है औ यद्यपि कैलास-रजतमय है तथापि क्या है, काहेतें स्ववर्ती वृक्षोंकों स्वर्ण किंवा रजतरूप नहींकर सकेहैं, यातें संतोकी तुल्यताके-योग्य नहीं ॥२२॥

२४ अब उक्त अर्थमें प्रमाणरूप जो वसिष्ठ वचन, तिसको अर्थतें पढेहैं:-

दोहा.

मुक्ति द्वारपालक चतुर, सम संतोष वि
चार ॥ चौथो सतसंगत धरम, महा
पूज्य निर्द्धार ॥२३॥ ॥ ॥

टीकाः- जैसें राजमंदीरमें द्वारपाल अन्य पुरुषका प्रवेश करावें हैं, तैसें मुक्तिरूप मंदिरमें प्रवेश करावणेवाले यद्यपि सम, संतोष, विचार, सत्संग, एह चार हैं; तथापि चतुर्थ जो सत्संगरूप धर्म सो विद्वानोनें महापूज्य

निर्णय कीया है ॥२३॥

सोई उत्तर दोहेकर दिखावे हैं:—

दोहा.

मुक्ति करन बंधन हरन, बहुत पतन
जग भव्य ॥ पै यह कोटि उपाय करि
सत्संगत कर्तव्य ॥२४॥ ॥

टीका:— यद्यपि मुक्तिके करनेवाले औ बंधनोके हरनेवाले बहुत यत्न शास्त्रोमें कहे हैं, तथापि भव्यजो विद्वान् तिनोनें एह निर्णय कीया है, अनेक उपायकर मुमुक्षुने सत्संगही करणीय है ॥२४॥

तामें हेतु कहे हैं:—

दोहा.

और धर्म जेतिक जगत, आहि सकाम
स्वरूप ॥ साधन ज्ञान उद्योतको,
है सत्संग अनूप ॥२५॥ ॥

टीका:— और यावत् धर्म जगतमें हैं सो इसलोक औ परलोकका जो विषयजन्यसुख तिसके देनेवाले हैं, यातें सकामरूप हैं औ उपसें रहित जो सत्संग है सो ज्ञानकी प्रगटताका साधन है ॥२५॥

२५ अब ताकी श्रेष्ठतामें प्रमाण कहे हैं:—

दोहा.

श्रुति स्मृति श्रीमुख कह्यो, सत्संगत

जग सार ॥ अनाथ मिटावै विषमता,
दरसावै स्वविचार ॥ २६ ॥ ॥

टीका:- ग्रंथकार उक्ति:- श्रुति स्मृतिमैं औ भागवतमैं श्रीकृष्णदेवनेभी यही कहा है:- "इस जगत्‌मैं सत्संगहीं सार है, काहेतैं सुष्ठु जो ब्रह्मविचार ताकूं दिखायके भेदबुद्धि दूर करे हैं" ॥२६॥

दोहा.

दुतियो माल विचारको, तिलकसहित
विश्राम ॥ इती भयो कह संत गुण,
हैं जो आत्माराम ॥ २ ॥ ॥

इति श्रीविचारमालायां संतमहिमावर्णनं नाम द्वितीय विश्रामः समाप्तः ॥२॥

अथ ज्ञानभूमिकावर्णन नाम

तृतीय विश्राम प्रारंभः ॥ ३ ॥

२७ अब ज्ञान कीयां सप्तभूमिका दिखावणेकी इच्छाकर तृतीय प्रकरणका आरंभ कर्तेहुए ग्रंथकार, आदिमैं शिष्यकी उक्ति कहे हैं:- शिष्य उवाच.

दोहा.

भो भगवन् गुन साधुके, मैं जाने नि
र्धार ॥ निरपेछक संकल्प गत, हैं
सुखसिंधु अपार ॥ १ ॥ ॥

टीकाः– हे भगवन्! आपने कहा जो संत अपेक्षासें रहित हैं औ सुखके समुद्र हैं, सो इत्यादि संतोके लक्षण मैनें निश्चयकर जाने हैं ॥१॥

अब जिस अभिप्रायकूं चित्तमें धारकर शिष्यने कहा, सो अभिप्राय प्रगट करे हैः–

दोहा.

हौं कामी वै सुमति चित, मोहि न आवै बूझ ॥ कैसें हित उपदेशकी, परे गैल निज सूझ ॥२॥ ॥ ॥

टीकाः– हे भगवन्! काम नाम विषयोंका है तिनकी इच्छावाला मैं हुं, यातें कामीं हुं, वै महात्मा सुमति चित्त कहिये चेतनमें निष्ठावाले हैं; तातें मेरा औ उनका संबंध कैसे होवे? औ जो आप ऐसे कहो संत दयालु स्वभाव हैं तातें तेरी उपेक्षा करें नहीं, तथापि मोहि न आवे बूझ कहिये मैं प्रश्न नहीं कर जाणूं हुं, तातें किस रीतिसें निजहित कहिये अपणा मोक्ष ताका मारग जो ज्ञान, सो कैसे जान्या जावे ॥२॥

२७ अब प्रश्नसें बिना संतोकी समीपतामात्रसें पुरुषोंकों बोध होवे है यह वार्ता दो दोहोंकर गुरु कहे हैंः–

श्रीगुरुरुवाच.

दोहा.

कहत संत जे सहज हीं, बात गीत रु

चि बैन ॥ ते तेरे तन दुख हरन, वा
यक सब सुख दैन ॥३॥ ॥

टीकाः- हे शिष्य! संत जो यथारुचि स्वभाविक परस्पर बात करे हैं:- "कहोजी भोक्ता कौन है? चिदाभास हैजी! काहेतें जी? कर्त्ता होणेतेंजी" इत्यादि औ गीत कहिये:- "सही हूं मैं सच्चित आनंदरूप, अपने कर्मकरे सभ इंद्री, हौं प्रेरक सभका भूप" इत्यादि पदोंकर कदाचित् गायन करे हैं। औ बैन कहिये शास्त्रो के बचन कथाके समय उच्चारण करे हैं, औ वायक कहिये तत्वमस्यादि महावाक्य शिष्योंप्रति कहे हैं, ते संपूर्ण तेरे हृदेमें होणेवाले जो दुःख तिनके हरणेवाले हैं; औ सब सुख कहिये ब्रह्मसुख तत्त्वज्ञानद्वारा ताके देणेवाले हैं॥३॥

दोहा.

बोलत सहज स्वभाव जे, बचन मनोह
र संत ॥ सप्त भूमिका ज्ञानकी, ति
नहींमें दरसंत ॥४॥ ॥

टीकाः- हे शिष्य! संत जो मनके हरणेवाले स्वभाविक बैन बोले हैं, तिन बचनोंमें हीं ज्ञान कीयां सप्त भूमिका दिखावे हैं। इति अन्वयः॥४॥

२८ शिष्य उवाच.

दोहा.

भो भगवन् मै दुषित अति, और न

कछू सहाय ॥ सप्त भूमिका ज्ञानकी,
कहो मोहि समुझाय ॥५॥ ॥

२९ श्रीगुरुरुवाच ॥ शुभ इच्छा सुविचार
ना, तनु मानसा सहोय ॥ सत्वापत्ति
असंसक्ति, पदार्थाभाविनि सोय ॥६॥
तुरिया सप्तम भूमिका, हे शिष यह नि
र्धार ॥ जो कछु अब संशय करे,
वरनौं सोइ प्रकार ॥७॥ ॥

३० शिष्य उवाच ॥ भो भगवन् लघु मति
सुमम, रहस्य लख्यो नहि जात ॥ भि
न्न भिन्न तातें कहो, ज्ञान भूमिका
सात ॥८॥ ॥ ॥

टीका:– रहस्य नाम स्वरूपका है। अन्य स्पष्ट॥८॥

३१ श्रीगुरुरुवाच ॥ ज्ञान भूमिका वरनन:–

दोहा.

विषयविषे भइ द्वेषता, गुरु तीरथ अ
नुराग ॥ तातें शुभ इच्छा कही, क
था श्रवण मन लाग ॥९॥ ॥

टीका:– विषयोमें अनित्यता सातिशयता दुः-
खसाध्यता औ जिनका स्पर्शमात्र आयुपरिणाममें अ
ति दुःखप्रद है इत्यादि दूषणोतें द्वेषता कहिये त्यागकी
इच्छापूर्वक गुरुतीर्थमें प्रीति औ पुराणादिकोके श्रवण

में चित्तकी प्रवृत्ति ॥९॥

दोहा.

भगवति रति गति आन मति, प्रेमयु
क्त नित्त चित्त ॥ गुन गावत पुलकित
हृदय ॥ दिन दिन सरस स्नेहित्त॥१०

टीका:- तिन पुराणोके श्रवणतें भगवत् विषै प्रीति, भगवत् ज्ञानतें भिन्न और किसीतें मोक्षका निश्चय ताकी निवृत्ति, भगवत्में प्रेमसहित चित्तकी स्थिति, औ परमेश्वर भक्तवत्सल हैं दयालु हैं प्रणतपाल हैं पतितपावन हैं इत्यादि भगवत् गुणगायन करतेहुए शरीरमें पुलकावली औ प्रतिदिन हृदयमें भगवत् संबंधी अधिक प्रीति, इत्यादि शुभ गुणोकी जिज्ञासाके संभवतें प्रथम शुभइच्छा नाम भूमिका कही॥ १०॥

२२ अब अपर सुविचारना नाम भूमिकाका स्वरूप कहे हैं:-

दोहा.

दूजी कही विचारना, उपज्यो तत्त्ववि
चार ॥ एकांत व्है सोधन लग्यो, को
ऽहं को संसार ॥११॥ ॥

टीका:- जब तत्वविचार उपज्यो, तत्व क्या है मिथ्या क्या है यह मैं जानूं, तब एकांतमें स्थित होइकर विचार करने लागा:- मैं कौनहूं, यह स्थूल देहही मैं हूं,

जे स्थूल देहहीं मैं होवों तो याकूं त्याग के परलोकमैं कैसे गमन करूं, तातैं स्थूल देहमैं नहीं। औ परलोकमैं गमन औ या लोकमैं आगमन लिंगदेहका होवै है, जे लिंगदेहही मैं होवों तौ लिंगदेहका सुषुप्ति अवस्थामें कारणमैं लय होवै है औ मैं सुषुप्तिमैं भी रहूं हूं, तातें मैं लिंगदेहभी नहीं औ सुषुप्तिमैं कारणदेह रहै है सो मैं होवौं तो मैं अज्ञ हूं या अनुभवतें कारणदेहरूप अज्ञान मेरी दृश्य प्रतीत होवै है, तातें सोबी मैं नहीं, इस रीतिसें त्रिते शरीरोतैं भिन्न भी मैं कर्ता भोक्ता हूं वा अकर्ता हूं? कर्ता सावयव होवै है मेरे अवयव प्रतीत होवैं नहीं, यातें मैं कर्ता नहीं, याहीतें भोक्ता नहीं; सो अकर्ता बी मैं सर्व शरीरोमैं एक हूं वा नाना हूं? वेद जीव ब्रह्मका अभेद प्रतिपादन करै है, जे आत्मा नाना होवैं तो अभेद बनै नहीं, यातें सर्व शरीरोमैं मैं एक हूं। सो एकबी मैं ब्रह्मसैं अभिन्न कैसे हूं? इस वार्ताके जानणेवास्ते गुरुकी शरणकों प्राप्त होवौं। औ को संसार कहिये कौनसा संसार मेरेतांई दुःखदाई है? ईश्वर रचित, वा जीव रचित; ईश्वर रचित संसार यह है:-"तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय" सो परमेश्वर इच्छा कर्ता भया मैं एकसैं बहुत प्रजारूप होवौं" या परमेश्वर इच्छानें जगत्की उपादानरूप प्रकृति तमोप्रधान होवै है, तिसतें शब्दसहित आकाशकी उत्पत्ति होवै है; आकाशतें वायुकी, वायुमैं

स्वगुण स्पर्श औ शब्द गुण कारणका होवैहै। वायुतें अग्नि, अग्निमें आपनारूप गुण औ शब्द स्पर्श कारणोके होवैहै। अग्नितें जल होवैहै औ जलमें आपका रस गुण औ शब्द स्पर्श औ रूप ये तीन कारणोके गुण होवैहैं। जलतें पृथ्वी औ पृथ्वीमें आपका गंधगुण औ शब्द स्पर्श रूप औ रस, ये चार कारणोके गुण उपजते हैं। इस रीतिसें भूतोंकी उत्पत्तितें पश्चात् पंचभूतोंके मिले सत्व अंशतें अंतःकरणकी उत्पत्ति होवैहै। सो अंतःकरण, वृत्तिभेदसें चार प्रकारका हैः– मन, बुद्धि, चित्त, अहंकाररूप, तैसें भूतोके मिले रजोअंशतें प्राण, अपान, समान, उदान, व्यानरूप, पंचविध प्राण होवैहै। हृदय [१] गुदा [२] नाभि [३] कंठ [४] औ सर्व शरीर [५] ये इनके क्रमसें स्थान होवैहैं। औ क्षुधापिपासा [१] मलमूत्र अधोनयन [२] भुक्त पीत अन्नजलको पाचन [३] जोग समकरणा [४] स्वास औ रसमेलन [५] ए पंच इनकी क्रमसें क्रिया होवैहैं। तैसें एक एक भूतके सत्व अंशतें पंचज्ञान इंद्रियोंकी उत्पत्ति इस रीतिसें होवैहैः– आकाशके सत्व रज अंशतें श्रोत्र औ वाक्‌की उत्पत्ति। वायुके सत्व रजो अंशतें त्वक् औ पाणिकी उत्पत्ति। अग्निके सत्व रजो अंशतें घ्राण औ गुदाकी उत्पत्ति होवैहै। इस रीतिसें सूक्ष्म सृष्टिकी उत्पत्तिसें अनंतर ईश्वर इच्छासें भूतोंका पंचीकरण इस रीतिसें होवैहैः– एक एक भूतके तमोअंशके दो

दो भाग भये तिनमैं एक एक भाग प्रथक् जीउकां नियुं रहा, अपर अर्ध भागोंके चार चार भाग कीये, सो अपणे अपणे भागकूं छोडके प्रथकू रहे, अर्द्ध भागोमैं मिलेनैं पंचीकरण होवै है। एक एकमैं पंच पंच मिलणेका नाम पंचीकरण है। तिनतैं स्थूल ब्रह्मांडकी उत्पत्ति होवै है। ब्रह्मांडके अंतर चतुर्दश भुवन, तिनमे रहणेवाले देव दैत्य मनुष्यादि शरीर, तथा तिनके यथायोग्य भोग्य होवै हैं। इत्यादि जो ईश्वर सृष्टि सो सुख दुःखकी हेतु नहीं, अपर जो जीव सृष्टि सो सुख दुःखकी हेतु है। यामैं दृष्टांत, ग्रंथांतरमैं इस रीतिसैं लिख्या है:- जैसें दो पुरुषनके दो पुत्र विदेशमैं गए होवैं, तिनमैं एकका पुत्र मरजावै, एकका जीवता होवै, सो जीता पुत्र बडी विभूतीकूं प्राप्त होयके किसी पुरुष द्वारा अपने पिताकूं अपनी विभूति प्राप्तिकी औ द्वितीयके मरणका समाचार भैजे। तहां समाचार सुनावणेवाला दुष्ट होवै, यातैं जीवते पुत्रके पिताकूं कहा तेरा पुत्र मरगया औ मरे पुत्रके पिताकूं कहै तेरा पुत्र शरीरनैं निरोग है, बडी विभूतिकूं प्राप्त हुवा है, थोडे कालमैं हस्ती आरूढ बडे समाजनैं आवेगा। ता वंचक वचनकूं सुनके जीवते पुत्रका पिता रोवै है बडे दुःखकूं अनुभव करै है औ मरे पुत्रका पिता बडे हर्षकूं प्राप्त होवै है। इस रीतिसैं देशांतर विषे ईश्वर रचित जीवतेका सुख होवै नहीं, तैसैं दूसरेका ईश्वर रचित पुत्र मरगया है ताका दुः

ख होवै नहीं, मनोमय जीवै है ताका स्रुख होवै है। या
तैं जीव सृष्टिहीं स्रुख दुःखकी हेतु है। ननु ईश्वर सृष्टि
तैं जीव सृष्टि भिन्न होवै तौ प्रतीत हुइ चाहिये औ प्रती
त होवै नहीं; यातैं भिन्न नहीं ? सो शंका बनै नहीं :-
काहेतें जैसें एकहीं ईश्वररचित स्त्री शरीरमें पतिकूं भार्या
औ भ्राताकों भगिनी तथा पुत्रकों माता प्रतीत होवै है, इ
त्यादि दश पुरुषोंकूं भार्या भगिनि आदि शरीर प्रतीत हो
वैहैं। तथा दशोंकोंही प्रथकू प्रथक् सुख दुःखका साक्षा
त्काररूप भोग होवै है। यातैं माता भगिन्यादि रूप जीव
सृष्टि अवश्य मानी चाहिये, सोई सुख दुःखका हेतु है
इस रीतिसैं विचारना। यह दूसरी स्रुविचारणा नाम भू
मिका है ॥११॥

३३ अब तृतीय तनु मानसा भूमिकाका स्वरूप कहैहैंः-

दोहा.

तनुमानसास्रु तीसरी, मनको प्रत्या
हार ॥ थिर व्है स्रुद्ध स्वरूपकी, रा
खै नित संभार ॥१२॥ ॥

टीकाः- बाह्य अंतर विषयोंतैं चित्तका निरोध क
रके नैरंतर्य्य ब्रह्मरूप धेयकी स्मृति, सो तीसरी तनुमा-
नसा नाम भूमिका है। मनकी सूक्ष्मता, तनुमानसा श
ब्दका अर्थ है ॥१२॥

३४ अब चतुर्थी सत्त्वापत्ति भूमिकाका स्वरूप दिखावैहैंः-

दोहा.

चतुर्थी सत्त्वापत्ति यह, अनुभव उदय
अभंग ॥ आत्मा जग दरस्यो भले,
ज्यों मध सिंधु तरंग ॥१३॥ ॥

टीकाः- पूर्वोक्त रीतिसैं ब्रह्मचिंतन करणेतैं उदय भया जो संशय विपर्यय रहित तत्त्वसाक्षात्कार, तिसकर आत्मामैं नामरूप आत्मक प्रपंचकी मिथ्यारूप कर प्रतीति होवै हैं। जैसैं समुद्रमैं मिथ्या रूप करके लहरियोंकी प्रतीति होवै है। यह चतुर्थी सत्त्वापत्ति रूप भूमिका है ॥१३॥

३५ अब पंचमी असंसक्ति नाम भूमिकाका स्वरूप कहै हैं:-

दोहा.

छूट्यो तन अभिमान जब, निश्चय-
कियो स्वरूप ॥ असंसक्ति यह भूमिका
पंचम महा अनूप ॥१४॥ ॥

टीकाः- चतुर्थ भूमिकामैं निश्चय कीया जो पृथक् अभिन्न रूप ब्रह्म, तिसमैं अभ्यासकी अधिकतासैं मदीयत्व रूपकर जो शरीरका अभिमान ताकी निवृत्ति, अर्थात् परशरीरवत् शरीरकी प्रतीति; यह उपमासैं रहित पंचमी असंसक्ति नाम भूमिका है ॥१४॥

३६ अब षष्टी पदार्थाभाविनि भूमिका दिखावै हैं:-

दोहा.

कहे पदारथ बुद्धि लौं, सबको होइ अ
भाव ॥ यह पदारथाभाविनी, षष्टी
भूमि लषाव ॥१५॥ ॥

टीकाः- दृष्टांतः- जैसें स्वर्णवेत्ता पुरुषकूं कटका
दि भूषणोके विद्यमान होयां बी सर्व स्वर्णरूप हीं प्रतीत
होवेहै। तैसें देहसें लेकर बुद्धि पर्यंत जो पदार्थ कहेहैं ति
न सर्वोका अभाव कहिये अधिष्ठान ब्रह्मरूपसें प्रतीति;
यह पदार्थोकी अनुपलब्धिरूप षष्टीभूमिका कही है ॥१५॥

३७ अब तुरीया नामक सप्तमी भूमिका दिखावेहैं:-

दोहा.

भावा भाव न तहां कछु, सप्तम तुरि-
या मांहि ॥ मैं तूं तहां न संभवे, कहा
अहै कह नाहिं ॥१६॥ ॥

टीकाः- सप्तम तुरीया नाम भूमिकामे मैं शब्दका
अर्थ प्रमाता, तूं शब्दका अर्थ प्रमेय, इन दोनोके बनणे
तैं अर्थसें सिद्ध हुवा जो प्रमाण, या त्रिपुटीरूप द्वैतकी-
जैसे चतुर्थी पंचमी भूमिकामें भावरूपकर प्रतीति होवे;
तैसें नहीं होवे है। अभाव रूपकर जैसे षष्टी भूमिकामें
प्रतीति होवे, तैसेंबी होवे नहीं। जो कहो भावाभाव प
दार्थतें भिन्न शेष रही वस्तु क्या है? तहां सुनोः- वाणी
का अविषय होनेतें अवाच्य है। यामें श्रुति प्रमाण हैः-

"यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह" मनसहित-वाणियां न प्राप्त होइके जातें निवृत्त होवें हैं" "यन्मनसा न मनुते" जिसकों मनकरके लोक नहीं जाणते" ॥१६॥
३८ अब ग्रंथ अभ्यासका फल कहे हैं:-

सोरठा.

प्रगट करी गुरुदेव, सप्तभूमिका ज्ञानकी ॥ अनाथ लहै निज भेव, चित दै करत विचार जो ॥१७॥ ॥

टीका:- अनाथदासजी कहे हैं:-गुरुनें प्रगट करीजो ज्ञानकी सप्तभूमिका, चित्तकों एकाग्रकर जो तिनकों विचारे, सो आपने वास्तव स्वरूपकों जाण लेवै ॥१७॥

दोहा.

तृतीयो माल विचारको, हरन सकल संताप ॥ ज्ञानभूमिका प्रगटकर, भयो सांत अब आप ॥३॥ ॥

इति श्री विचारमालायां सप्तज्ञानभूमिका वर्णनं नाम तृतीय विश्रामः समाप्तः ॥ ३॥

अथ ज्ञानसाधन वर्णन नाम

चतुर्थ विश्राम प्रारंभः ॥ ४॥

३९ पूर्व विश्राममें ज्ञानकी सप्तभूमिका कही, अब ज्ञानके साधन जानवेकी इच्छावाला हुवा शिष्य कहे हैं:-

शिष्यउवाच.

दोहा.

भगवन मै जान्यो भले, सप्तभूमिका
ज्ञान ॥ निर्मल ज्ञान उद्योतकूं, सा
धन कौन प्रमान ॥ १ ॥ ॥

टीका:- हे भगवन्! ज्ञानकी सप्तभूमिका मैं भली प्रकार जानी है, अब समष्टि व्यष्टि उपाधिरूप मलसें रहित शुद्धब्रह्मका जो ज्ञान, ताकी उत्पत्तिके साधन कौन हैं? यह कहो। याका भाव यह है:- जिन साधनोंनें ज्ञानमें अधिकार होवै सो प्रमातामें होणेवाले साधन कहो? औ प्रमान कहिये प्रत्यक्षादि षट् प्रमाणमें किस-प्रमाणजनित तत्त्वज्ञान कह्या है? यह कहो ॥ १ ॥

अब शिष्य, अपनी उक्तिमें हेतु कथनार्थ प्रथम दृष्टांत कहे हैं:-

दोहा.

भगवन तिमिर नसै नहीं, कहि दीप
ककी बात ॥ पूरन ज्ञान उदयबिना,
हृदे भरम नहिं जात ॥ २ ॥ ॥

टीका:- हे भगवन्! जैसें अंधकारमें स्थित पुरुषका दीप तैल बत्ती जोतिकीयां बातों कीयेसें अंधकार दूर नहीं होवै है, तद्वत् ब्रह्मज्ञानके उदयबिना हृदेमें स्थित जो अनात्मामें आत्मप्रतीतिरूप भ्रम सो दूर नहीं हो-

वे है; यातें आप ज्ञानके साधन कहो ॥२॥

४० इस रीतिसें शिष्यकर पूछे हुए श्रीगुरु, ज्ञानके साधन कहे हैं:- **श्रीगुरुरुवाच** ॥ ज्ञान साधन कहत हैं:-

दोहा.

प्रथमें जक्तासक्ति तजि, दारा सुत गृह वित्त ॥ विषवत् विषय विसारि जग, राग द्वेष अतित्त ॥ ३ ॥ ॥

टीकाः- हे शिष्य ! प्रथम विषय संपादनका साधन रूप जो जगत् तामें आसक्तिका त्यागकर, काहेतें संसारासक्ति ज्ञानकी विरोधी है । यह पंचदशीमें कहा हैः- ॥ श्लोक ॥ " संसारासक्तचित्तः संश्चिदाभास कदाचन ॥ स्वयंप्रकाश कूटस्थं स्वतत्वं नैव वेत्त्ययम् [१] " यह चिदाभासरूप जीव विषयसंपादनादि ध्यानरूप जगत्में आसक्त चित्त हुवा, कदापि स्वते प्रकाश कूटस्थ स्वस्वरूपकूं नहीं जाने है" ओ धन दारा सुत गृह इनमेंबी आसक्तिका परित्यागकर । जातें ज्ञानके अधिकारीमें आसक्तिका अभाव गीतामें कहा हैः- "असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदार गृहादिषु" पुत्र दारा गृह - आदिकोमें प्रीतिका अभाव"। ओ शब्दादि विषयोंकूं विषकी न्याई भूलाए, काहेतें विषयासक्ति बी ज्ञानमें प्रतिबंध है । सो अष्टावक्रमें कहा हैः- " मुक्तिमिच्छसि चे-

त्तान विषयान् विषवत्त्यज" औ राग द्वेषका सर्वथा परित्याग कर, काहेतें भगवाननें कहा है:- "इंद्रियोंके शब्दादि विषयोंमें राग द्वेष स्थित हैं, मुमुक्षु तिनके वश न होवै, काहेतें सो इसके परिपंथी हैं" ॥ ३॥

४१ पूर्व कहा जो जगतादि पदार्थोंमें आसक्तिका त्याग, ताकी सिद्धिअर्थ प्रत्येक पदार्थमें दूषण दिखावणेकी इच्छावाले हुये, प्रथम स्त्रीमें दूषण दिखावे हैं:-

दोहा.

तिय अति प्रिय जे जानि नर, करत प्रीति अधिकाय ॥ ते सठ अति मतिमंद जग, वृथा धरी नर काय ॥ ४॥

टीका:- जे नर स्त्रीकूं अति प्यारी जानकर तामें अति प्रीति करैहैं, ते पुरुष शठ हैं औ अति मंद बुद्धि हैं; काहेतें मोक्षका साधन मनुष्य शरीर तिनोनें व्यर्थ खोया है ॥ ४॥

दोहा.

अस्थि मांस अरु रुधिर त्वक्, कस्मल नष सिष पूर ॥ निरधन अरुचि मलीन तन, त्याग आग ज्यूं दूर ॥ ५॥

टीका:- हे शिष्य ! स्त्रीशरीर हाड मांस अरु रक्त चमडी इन अशुद्ध पदार्थोंकर नखसें लेकर शिखापर्यंत पूरन है औ जातिकर भी नीच भगवानने कही है

ओ अरसैं शरीरकर अपवित्र ओ मलीन है ओ यहस्त्री शरीरकर हीं दुष्ट नहीं किंतु स्वभावसैं बी दुष्ट है। सो बी-कहा हैः- ॥चौपाई॥ "नारिस्वभाव सत्य कविकहहीं, अवगुन आठ सदा उर रहहीं ॥ साहस अनृत चपलता माया, भय अविवेक अशोच अदाया ॥" "कोटि वज्र संघात जु करिये, सबको सार खींच इक धरिये ॥ तिय के हिय सम सो न कठोरा, रिषि मुनि गन यह देत ढंढोरा ॥" यातैं अग्निकी न्याई दाहका हेतु जानकर ताका त्याग कर ॥५॥

ननु जैसैं सर्प बिछू आदिक स्पर्शसैं अनर्थकरहोवैहैं, तैसैं स्त्रीभी स्पर्शद्वारा अनर्थका हेतु है; चिंतन-ध्यानादिकों कर नहीं? यह आशंका कर कहैं हैंः-

दोहा.

अहिविष तन काटे चढै, यह चितवत
चढि जाय ॥ ज्ञान ध्यान पुनि मान हूं,
लेत मूल युत पाय ॥ ६॥ ॥

टीकाः- यद्यपि सर्पका विष, स्पर्श कियेसैं चढै है तथापि यह कामरूप विष, स्त्रीके चिंतन मात्रसैं शरीरमैं प्रवेश करै है; यातैं चिंतनकूं भी मैथुन कहा है ओ स्पर्श कियेसैं तौ शास्त्रज्ञानकूं दूर करै है। सोई कहा-हैः- "जब पंडित पढि तियपै ढिसरे, उक्ति युक्ति सब ही तब विसरे"। किंवा चित्तकी एकाग्रता अर्थ जो धेया-

कार वृत्तिरूप ध्यान औ श्वास, इनकूं विचारसहित दूर करें है। मैथुन कीयेसें श्वास अधिक टूटें है इहीं प्राणका रवाणा है ॥ ६॥
४२ या स्त्रीचिंतनकूं मैथुनरूप कहीं कहा है? या आकांक्षाके हीयां कहे हैं:-

दोहा.

मैथुन अष्टप्रकार जो, अनाथ कह्यो श्रुति चाहि ॥ इनतें निजविपरीत-
जो, ब्रह्मचर्य कहि ताहि ॥७॥

टीकाः- वक्ष्यमाण दोहेमें कहणा जो है अष्टप्रकारका मैथुन सो श्रुतिमें देखकर कहा है। इस अष्ट प्रकारके मैथुनसें जो विपर्यय है स्त्रीके श्रवण स्मरणादिका त्यागरूप, सो ब्रह्मचर्य कहिये है ॥७॥

सो अष्टप्रकारका मैथुन कोनसा है? तहां सुनोः-

दोहा.

सरवन सिमरन कीरतन, चितवन-
बात इकंत ॥ दृढ संकल्प प्रयत्न तन,
प्रापति अष्ट कहंत ॥८॥ ॥

टीकाः- स्त्रीके सौंदर्यादि गुणोंका श्रवण औ कदाचित् अनुभव कीयेका स्मरण औ हर्षपूर्वक तिनका कथन औ तिनका चिंतन औ एकांतस्थलमें स्त्रीसें संभाषण औ ताकी प्राप्तिका दृढ संकल्प, पुनः ताकी प्रा

सिअर्थ प्रयत्न औ तातें संभोग; यह अष्ट प्रकारका मैथुन कहा है ॥८॥

४२ इस रीतिसें स्त्रीमें दूषण कहकर, अब पुत्रमें दूषण दिखावे हैं:-

दोहा.

सुत मीठी बातां कहै, मनहु मोहिनी मंत ॥ सुनि सुनि आनंद पावहि, वस होत मूढ जग जंत ॥ ९ ॥ ॥

टीकाः- पुत्र जो मधुर तोतले वचन कहे है, सो मानो चित्तके मोहित करणेवाले मोहिनी मंत्र हैं। तिनोकूं पुनः पुनः श्रवण करके जे आनंदमग्न होयके ताके वश होवे हैं ते पुरुष मूढ हैं। सोई कहा है:- ॥ दोहा ॥ "कर विचार यों देखिये पुत्र सदा दुषरूप ॥ सुख चाहत जे पूततें ते मूढनके भूप" ॥ ९॥

पुत्रमें आसक्त पुरुषकों मूढ कहा तामें हेतु कह्या चाहिये? ऐसें कहो, तहां सुनोः-

दोहा.

काज अकाज लह्यो नहीं, गह्यो मोह दृढ बंध ॥ सुगुरु खोज मग ना चह्यो, वह्यो सिंधु मति अंध ॥ १० ॥

टीकाः- जातें पुत्रमें आसक्तिरूप दृढ बंधन कर बंधायमान होइकें जा पुरुषनें, सुष्टु गुरुका अन्वेषण

(खोज) करके, मेरेनांई मनुष्य शरीर पाइके क्या कर्त-
व्य है ऐसें नहीं जान्या औ मोक्षके मार्ग तत्त्वज्ञानकूं सं
पादन नहीं किया औ विवेकसें रहित होकर जन्म मरण
रूप संसार समुद्रमें निमग्न हुवा है; तातें सो पुरुष मू
ढ है। सोई कहा है:- "निद्रा भोजन भोग भय, ए
पशु पुरुष समान ॥ नरन ज्ञान निजअधिकता, ज्ञान
विना पशु जान" ॥१०॥

४४ इस रीतिसे पुत्रमें दूषण दिखाइके गृहमें दूषण
दिखावे हैं:-

सोरठा.

अंध कूप सम गेह, पच्यो नजान्यो म
रमसठ ॥ बंध्यो पसुवत नेह, सुत
त्रिय क्रीडामृग भयो ॥११॥

टीका:- जलसें रहित वनके कूपकी न्याई दुःख
दाई जो गृह, ताके भरणमें प्रयत्नमान् हुआ औ गृहमें
स्थित जो सुत दारादि तिनमें स्नेहरूप रज्जुकर बंधाय
मान हुवा, तिनकी क्रीडाका मानो मृग भया है। औ
जैसे कोइ पुरुष अपणे आल्हादके अर्थ गृहमें प्रीति-
करे हैं तैसें ये सुत दारा आदि आपने सुख अर्थ मेरे-
में प्रीति करे हैं या मर्मकूं नहीं जाने है; यातें शठ है ॥११॥

४५ अब द्रव्यमें दूषण दिखावे हैं:-

दोहा.

द्रव्य दुषद तिहुं भांति यह, संपति मा
नत क्रूर ॥ बिसर्‍यो आत्मज्ञान ध-
न, सब सुख संपति मूर ॥१२॥

टीकाः– सुत दारा गृह इन तीनोंकी न्याई दुः
खदाई जो धन ताकूं जो संपत्ति मानें है, सो पुरुष क्रूर
कहिये झूटा है; काहेतें जा धनके संपादनकर आप-
णे आत्माका ब्रह्मरूपतासें जो ज्ञानरूप धन सो वि-
स्मरण भया है। सो ज्ञान कैसा है? सब सुख कहि
ये ब्रह्मसुख ताकी संपत्ति कहिये प्राप्तिका हेतु है॥१२

धन, दुःखका हेतु किस प्रकारसें है? ऐसें कहो
तहां सुनोः–

दोहा.

बहु उद्यम प्रानी करै, अति क्लेशता
हेतु ॥ जुरे तु रच्छा निपट दुःख,
जाइ तु प्रान समेत ॥१३॥ ॥

टीकाः– धनकी प्राप्तिअर्थ जो पुरुष, कृषि वाणि-
ज्यादि बहुत उपाय करै हैं, तिनकर तिनकूं अति क्लेश हो
वै है, यातें संग्रहकालमें दुःखदाई है। औ किसी पु-
ण्य वशतें इकत्र हो जावै तौ नृप चौर अग्न्यादिकोंतें र
क्षा करणेमें अति क्लेश होवै है औ नृप चोर अग्न्यादि
निमित्ततें दूर होजावै तौ प्राण वियोगके समान दुःख

होवैहै; जातें धन,पुरुषका बाह्य प्राण है। सोई पंचदशी में कहा है:- "अर्थोंके एकत्र करणेमें क्लेश है, तैसें रक्षा करणेमें औ नाशमें औ खरचणेमें क्लेश है,ऐसें क्लेश करणेवाले धनोंकूं धिक्कार है" ॥१३॥

४६ पूर्व एकादश दोहोंकर कहे अर्थकूं दृष्टांत सहित एक दोहेकर कहे हैं:-

दोहा.

तातें इनको संग तूं, छांड कुसल जियमान ॥ मानो विषतें सर्पतें, ठगतें छुट्यो निदान ॥१४॥ ॥

टीका:- जातें सुत दारा गृह धन, उक्त रीतिसें दुःखदाई हैं; तातें तूं इनके संबंधकूं त्याग करि आपणा कल्याण निश्चय कर। यद्यपि कल्याण नाम सुखका है, सो इष्टकी प्राप्तिसें होवै है; तथापि अनिष्टकी निवृत्तितेंभी होवैहै। यामें दृष्टांत कहे हैं:- जैसें कोउ बालक विष सर्प ठगके वश हुवा किसी पुण्य वशतैं छूटके आपकों सुखी मानै, तद्वत् ॥१४॥

४७ पूर्व तृतीये दोहेके प्रथम पादमें "जगत्‌में आसक्तिका त्यागकर" यह कहा तामें हेतु कहे हैं:-

दोहा.

जगत् खेदमें परे जिन, केवल दुष ता माहिं ॥ सत्य सत्य पुन सत् कहुं,

सुख स्वप्नेहूं नांहिं ॥१५॥ ॥

टीकाः– हे शिष्य! पूर्व उक्त जगत्‌का परित्याग कर, तामें आसक्ति मत कर; काहेतें तामें केवल क्लेशही हैं। इस अर्थकूं प्रतिज्ञाकर कहे हैं; सत्य इत्यादि पदों कर ॥१५॥

४८ अब श्रोताकी बुद्धिमें अर्थके आरूढ होणेअर्थ, जगत्‌कों समुद्रके रूपालंकारसें कहे हैं:–

दोहा.

जग समुद्र आसक्ति जल, कामादिक
जलजंत ॥ भवर भरम तामें फिरें,
दुष सुख लहर अनंत ॥१६॥ ॥
चिंता वडवा अग्नि जहँ, तृष्णा प्रबल
समीर ॥ जिहिं जहाज यामें पर्‌यो,
तिहिं किम धीर समीर ॥१७॥ ॥

टीकाः– जिस पुरुषका चित्तरूपी जहाज या जगत्‌रूप समुद्रमें पड्या है ताके अंतःकरणमें धैर्यादि दैवी संपदूके गुण कैसें उदय होवें। अन्य स्पष्ट ॥१७॥

४९ पूर्वोक्त जगत्‌में आसक्ति किस हेतुतें होवे है? या आकांक्षाके होयां, शरीरमें आत्म अभिमानतें होवे है; यह वार्ता सदृष्टांत दो दोहोंकर कहे हैं:–

दोहा.

अपनो चित दुरास भयो, पर अवगुन

दर संत ॥ दृष्टि दोषतें प्रगट ज्यों, वि
व ससि गगन लहंत ॥ १८ ॥ ॥

टीका:- जैसें अपनें चित्तमें दुराशतारूप दोषक
र अन्य पुरुष निष्ट दूषण प्रतीत होवे हैं औ नेत्रोमें ति
मिरादि दोषकर आकाशमें दो चंद्र प्रसिद्ध प्रतीत होवेहैं॥१८

इस रीतिसें दृष्टांतकर कहे अर्थकूं दार्ष्टांतमें जोडे हैं:-

दोहा.

तातें तन अभिमान तजि, अजर पासि
बड आहि ॥ ज्ञान लोप संसारकर,-
भूल न गहिये ताहि ॥ १९ ॥ ॥

टीका:- उक्त दृष्टांतोकी न्याई शरीरमें आत्म अ
भिमानकर जगत्में आशक्ति होवे है, तातें ता अभि-
मानका परित्याग कर। यद्यपि चिरकालकी होणेतें अ-
भिमानरूप पासी अजर है तथापि ज्ञानकर ताका बाध
निश्चयरूप लोप होवे है, तातें सो तूं कर। इस रीतिसें
लोप कीये पुनः संसारमें भूलकरभी आसक्ति होवे न
हीं ॥ १९ ॥

५० विषवत् विषय विसार यह पूर्व कह्या, तामें हेतु
कहे हैं:-

दोहा.

सुख ब्रह्मा इंद्रादिके, स्वान विष्टवत्
त्याग ॥ नाममात्र सुख अवनिके,

भूल न इन अनुराग ॥ २० ॥ ॥

टीकाः– ब्रह्मा औ इंद्रादि देवनके जो शब्दादि वि
षय हैं, सो कूकरके विष्टावत नीरस हैं; तिनमैं सुख न-
हीं, तातें तिनका परित्याग कर। औ पृथ्वीके शब्दादि वि
षयोमें सुख संज्ञा मात्र है। जेसें किसी जन्मांध पुरुषका
कमलनयन नाम कल्पे, सो निरर्थक कथन मात्र है। ता
तें हे शिष्य! इन पृथ्वीके शब्दादि विषयोमें भूलकर
भी प्रीति मत कर। ननु विषयोमें सुख नहीं, यह तुमा
री कपोल कल्पना है? सो शंका बने नहीं:– काहेतें यु
क्ति प्रमाणकर या अर्थकी सिद्धि होवे है। जे कहो युक्ति
प्रमाण कोण है? तहां सुनोः– जो विषयमें आनंद होवे
तो, एक विषयसें तृप्त जो पुरुष ताकूं जब दूसरे विषयकी
इच्छा होवे तब बी प्रथम विषयसें आनंद हुवा चाहिये -
औ होवे नहीं है; यातें विषयमें आनंद नहीं। किंवाः-
जो विषयमेंहीं आनंद होवे तो, जा पुरुषका प्रिय पुत्र अ
थवा और कोई अत्यंत प्यारा जो अकस्मात् बहुतकाल पी
छे मिलजावे तब वाकूं देषते ही प्रथम जो आनंद होवे सो
आनंद फेर नहीं होता, सो सदाहि हुवा चाहिये; काहेतें
आनंदका हेतु जो पुरुष है सो वाके समीप है, यातें पदा
र्थमें आनंद नहीं। किंवाः– जो विषयमें आनंद होवे -
तो, समाधिकाल विषे जो योगानंदका भान होवे सो न
हुया चाहिये; काहेतें समाधिमें किसी विषयका संबंध

नहीं है, यातें विषयमें आनंद नहीं। इत्यादि युक्ति है। औ वेदमें यह लिखा हैः- "आत्मस्वरूप आनंदकूं लेके सारे आनंदवाले होवे हैं". ननु विषयोमें आनंद नहीं है तो भान क्यूं होवे है? तहां सुनोः- विषय उपहित चेतन स्वरूप आनंदकी पुरुषकूं विषयमें प्रतीत होवे है। ननु विना होई वस्तुकी प्रतीति होवे नहीं औ चेतन स्वरूप नित्य आनंदकी विषयमें अनिर्वचनीय उत्पत्ति होवे, यह कहना बने नहीं औ अन्यदेशमें स्थित विषयकी अन्य देशमें प्रतीति वा अन्य वस्तुकी अन्य रूपतें प्रतीतिरूप अन्यथा ख्यातिका अंगीकार नहीं; यातें विषय उपहित चेतनस्वरूप सुखकी विषयमें प्रतीति होवे है, यह कहना बने नहीं? सो शंकाबी बने नहींः- काहेतें यद्यपि अन्यथा ख्यातिका सिद्धांतमें अंगीकार नहीं, तथापि अधिष्ठान औ आरोप्य जहां एक वृत्तिके विषय होवें, तहां अन्यथाख्यातिहीं मानी हैं। तथाहिः- जैसे रक्तपुष्प संबंधी स्फटिकरूप अधिष्ठान औ लालीरूप अध्यस्त दोनो एक वृत्तिके विषय हैं, तहां स्फटिकमें रक्तताकी प्रतीति अन्यथाख्यातिसें होवे है। तैसें इहां सिद्धांतमें अन्यथाख्यातिहीं अंगीकार करी है। औ अन्यथाख्यातिमें सर्वथा विद्वेष होवे तो, विषय उपहित आनंदका विषयमें अनिर्वचनीय संबंध उपजे है। विषय उपहित आनंदका स्वरूप संबंध चेतनमें है, ताकी विषयमें अनिर्व-

चनीय उत्पत्ति होवै है; यातैं इहां अनिर्वचनीयख्यातिहीं है। अरु जो कहे, विषयाकार वृत्तिसैं विषय उपहित चेतन स्वरूपानंदका लाभ होवै तो, मार्गमैं वृक्षाकार वृत्तिसैं तथा सर्वज्ञेयाकार वृत्तिसैं ज्ञेय उपहित चेतनस्वरूपानंदका लाभ हुवा चाहिये? सो बनै नहीं:- काहेतैं अभिलषित विषयाकार वृत्तिसैं विषय उपहित चेतन स्वरूपानंदका भान होवै है, अन्यका नहीं ॥२०॥

५१ ननु विषयोमैं सुख नहीं तौ, पुरुषोंकी प्रवृत्ति किउ होवै है? या शंकाके होयां, विचारविना होवै है औ प्रवृत्तिसैं प्रत्युत क्लेशहीं होवै है, यह अर्थ सदृष्टांत तीन दोहोंकर दिखावै हैं:-

दोहा.

धायो चात्रिक धूम लहि, स्वांत बूंदकों मानि ॥ मूरख पर्‍यो विचार बिन, भई दृगनकी हानि ॥२१॥ ॥

टीका:- जैसे कोउ चातृक पक्षी, दूरसैं धूमकूं देखकर तामैं मेघबुद्धिसैं स्वांत बूंदका निश्चय करके, सो मूर्ख पक्षी विचारसैं विना ता धूममैं प्रवेश करे तो बूंदका अलाभ औ नेत्रोंकी हानि होवै है ॥२१॥

अन्य दृष्टांत:-

दोहा.

नारि पराई स्वप्नमैं, भुगती अति सु

रव पाय ॥ धर्म गयो कंद्रप गयो, अ
रुचि भयो रु रवसाय ॥ २२ ॥ ॥

टीकाः- जैसें किसी विचारशून्य पुरुषनें परस्त्री वा स्वप्न स्त्री अति सुख मानके भोगी, तातें संतानका अलाभ औ धर्मकी हानी होवे है। कंद्रप गयो कहिये वीर्यकी हानि अरु खसाय कहिये वीर्यपाततें, अशुचि होवे है ॥ २२ ॥

अन्य दृष्टांत कहे हैं:-

दोहा.

चोग देषि ज्यूं परत खग, आप बंधा
वत जार ॥ ऐसें सुखसो जानि ज
ग, वस भये हीन विचार ॥ २३ ॥

टीकाः- जैसे विचारशून्य पक्षी, जालवाले स्थानमें चोगकूं देखके तृप्तिके अर्थ प्रवृत्त होवै; तहां तृप्तिका अलाभ होवे है औ प्रत्युत अपणे आपकों जाल में बंधायमान करे है। इस रीतिसें दृष्टांत कहकर, अब दार्ष्टांत कहे हैं:- सो पूर्वोक्त विषय, सुखरहित हैं; विचारशून्य पुरुष तिनके वश होयके केवल दुषहीकूं अनुभव करे हैं ॥ २३ ॥

५२ अब तिन विचारशून्य विषयी पुरुषोंकी निर्लज्जताकूं, स्वान दृष्टांतसें प्रगट करे हैं:-

दोहा.

स्वान स्वतियको संगकरि, रहत घरी उरझाय ॥ जग प्रानी ताको हसें, अपनो जन्म विहाय ॥ २४ ॥ ॥

टीकाः- कूकर जो अपने पशुस्वभावसें स्वकूकरीसें ग्राम्य धर्म करिके एक घटिकाभर फस रहे हैं, ताकूं जो विचारशून्य जगत्के जीव हसें हैं, सो तिनकी निर्लज्जता है; काहेतें ऐसें विचार नहीं करें हैं, जो यह स्वान षट्‌मास पश्चात् एकवार संभोग करणेतें क्लेशकूं अनुभव करैहै, हमारा तो इस कर्ममें जन्म व्यतीत हो वैहै, हमकूं परिणाममें केता क्लेश होवैगा ॥२४॥

५२ औ जे कहो, पूर्वोक्त विषयोंके त्यागमें कौन प्रमान है? तहां सुनोः- यद्यपि श्रुति स्मृतिरूप प्रमान बहुत हैं तथापि ज्ञानी अज्ञानीके वैरागके भेद दिखावणेअर्थ महात्माका आचाररूप प्रमाण कहे हैंः-

दोहा.

अनाथ बिसारे विषयरस, संतन जान मलीन ॥ ता उच्छिष्टसों रति करें, कामी काक अधीन ॥ २५ ॥ ॥

टीकाः- स्वामी अनाथजी कहे हैंः- संतोंनें विषयोंकूं अविद्याके कार्य औ अनित्यता आदि दूषणोसहित जाणकर त्यागे हैं औ जे पुरुष प्रथम भुक्त औ त्यक्त

पदार्थोसें प्रीति करै हैं औ कामी हुये तिनके आधीन होवै हैं, सो पुरुष काक कहिये कौवा जैसें पक्षियोमें नीच है तैसे अधम हैं। भाव यह हैः– अज्ञानीकूं जो वैराग होवै है सो विषयोमें दोषदृष्टिसें होवै है, सो कालांतरमें पुनः विषयोमें सम्यक् बुद्धिसें दूर होवै है। जैसें मैथुनके अंतमें सर्व पुरुषोकूं स्त्रीमें ग्लानि होवै है औ कालांतरमें शोभन बुद्धि होवै है; यातें अज्ञानीका-वैराग्य मंद है औ ज्ञानवान्कूं जो वैराग्य होवै है सो विषयोमें दोषदृष्टि औ मिथ्यात्व निश्चय पूर्वक होवै है ; यातें त्यक्त विषयोकूं पुनः ग्रहण करै नहीं। जैसें अपणें वमनकूं फेर पुरुष ग्रहण नहीं करता तैसें। यातें ज्ञानीका वैराग दृढ है ॥२५॥

५४ इस रीतिसें दोष दृष्टिरूप वैराग्यका हेतु औ त्यागरूप वैराग्यका स्वरूप कहा, अब वैरागका फल कहेहैं:-

दोहा.

जगडंबरसों जग जहां, उपजै निज निरवेद ॥ पाक काचरी सर्प ज्यों, छुटै सहज जग षेद ॥ २६ ॥

टीकाः– जहां पर्यंत यह जगत्रूप अडंबर है, अर्थ यह जो प्रत्यक्ष प्रमाणके विषय या जगत्में औ शब्दादि प्रमाणजन्य ज्ञानके विषय स्वर्गादि जगत्में, जब पुरुषकों वैराग्य उत्पन्न होवै, तब अनायासतेंही ज्ञान

द्वारा जन्म मरण रूप खेदकी निवृत्ति होवै है। जैसें प
की त्वचाकूं अनायासतें सर्प त्यागे है तैसें ॥२६॥
५५ ज्ञानके अधिकारीमें एक वैराग्य हीं नहीं होवै है, किंतु अपर साधनही होवै हैं, यह कहे हैं:-

दोहा.

पाप छीन तप दान बल, हृदे सांत गत
राग ॥ विषय वासना त्याग करि ,-
भ्यो मुमुछु बड भाग ॥ २७॥

टीकाः- जा पुरुषने दान बल कहिये ईश्वरार्थ शुभ कर्मोंकर पाप निवृत्त कीये हैं, अर्थात् जो शुद्ध हृदय है औ उपासनारूप तपके बलकर शांत हृद कहिये एकाग्र चित्त है औ गतराग कहिये वैराग संयुक्त है औ विषयोंकी वासना त्यागकर अर्थात् षट् संपत्तिसंयुक्त होकर जो बडे भागवाला अविद्या तत्कार्यरूप-बंधकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्षकी इच्छावाला है। इहां विवेकका अध्याहार करणा। इस रीतिसें शुद्ध हृदय औ एकाग्रचित्त औ चतुष्टय साधन संपन्न जो पुरुष सो तत्त्वज्ञानका अधिकारी है॥२७॥
५६ अब ज्ञानके अधिकारीकूं कर्तव्य कहे हैं:-

दोहा.

सो अधिकारी ज्ञानको, श्रवण ज्ञानम
य ग्रंथ ॥ सो तबलग जबलग भले,

समझे पंथ अपंथ ॥ २८ ॥ ॥

टीका:- सो अधिकारी पुरुष षट्लिंगोसैं वेदांत वाक्यनका तात्पर्य निश्चयरूप श्रवण करे। सो षट्लिंग यह हैं:- उपक्रम उपसंहारकी एकरूपता [१] अभ्यास [२] अपूर्वता [३] फल [४] अर्थवाद [५] उपपत्ति [६] अब इनके अर्थ सुनो:- जो अर्थ आरंभमें होवै सोई समाप्तिमें होवै, तहां उपक्रम उपसंहारकी एकरूपता कहिये है। जैसें छांदोग्यके षष्ठाध्यायके उपक्रम कहिये आरंभमें अद्वितीय ब्रह्म है औ उपसंहार कहिये समाप्तिमें अद्वितीय ब्रह्म है [१] पुनः पुनः कथनका नाम अभ्यास है। छांदोग्यके षष्ठ अध्यायमें नववार-तत्त्वमसि वाक्य है, यातें अद्वितीय ब्रह्ममें अभ्यास है [२] प्रमाणांतरतें अज्ञातताकूं अपूर्वता कहे हैं। उपनिषद्रूप शब्द प्रमाणतें और प्रमाणका अद्वितीय ब्रह्म विषय नहीं, यातें अद्वितीय ब्रह्ममें अज्ञातता रूप अपूर्वता है [३] अद्वितीय ब्रह्मके ज्ञानतें मूल सहित शोक मोहकी निवृत्तिरूप फल कह्या है [४] स्तुति अथवा निंदाका बोधक वचन अर्थवाद वाक्य कहिये है। अद्वितीय ब्रह्म बोधकी स्तुति, उपनिषदनमें स्पष्ट है [५] कथन-करे अर्थके अनुकूल युक्तिकूं उपपत्ति कहे हैं। छांदोग्यमें सकल पदार्थनका ब्रह्मसें अभेद कथनके अर्थ कार्य-का कारणतें अभेद प्रतिपादन, अनेक दृष्टांतोसें कह्या

है [६]। इस रीतिसें षट्लिंगनतें सकल वेदांतनका ता
त्पर्य जानिये है। सो श्रवण, ज्ञानमय ग्रंथ जो उपनिषद्
ग्रंथहैं तिनसें सिद्ध होवे है। तातें तिनकूं श्रवण करे।
सो तिनकूं तबलग श्रवण करे, जबलग श्रवणका फल-
प्रमाणगत संशयकी निवृत्ति होवे। सो फल यह है:-
पंथ कहिये वेदांतवाक्य अद्वितीय ब्रह्मके प्रतिपादक हैं,
अपंथ कहिये अन्य स्वर्गादि अर्थके प्रतिपादक नहीं; इ
स रीतिसें समझे कहिये निश्चय करे ॥२८॥

जे कहो, अद्वितीय ब्रह्ममें वेदांतवाक्योंके तात्प-
र्यका निश्चय षट्लिंगोतें होवे है, परंतु ब्रह्मात्माका-
अभेद निश्चय काहेतें होवेहै? तहां सुनोः-

दोहा.

तत्वमसि अहंब्रह्मास्मि, इत्यादिक म
हावाक्य ॥ गुरुमुख श्रवण करे भ-
ले, सारासार हताक ॥२९॥ ॥

टीका:- गुरुमुखवात् तत्वमसि महावाक्यके अ
र्थ श्रवण करणेतें "अहंब्रह्मास्मि" में ब्रह्म हूं" यह-
ज्ञान होवे है। सो या रीतिसें होवे है:- तत्वमसि या
वाक्यमें तत् त्वं असि ये तीन पद हैं, तिनमें प्रथम पद
का वाच्य कहे हैं:- मायाउपहित् जगत्का कारण, स
र्वज्ञतादि धर्मवान्, परोक्षता विशिष्ट, सत्य ज्ञान अनं-
त स्वरूप जो ईश्वर, चेतन, सो तत् पदका वाच्य है। अब

त्वंपदका वाच्य कहे हैं:- जो अंतःकरण विशिष्ट, अहं श ब्द औ अहं वृत्तिकी विषयताकर प्रतीत होवे है, सो जीव चेतन त्वंपदका वाच्य है औ असिपद दोनोंकी एकताका बोधक है। अब वाक्यार्थ कहे हैं:- जो सर्वज्ञतादि गुण-वान् परोक्ष ईश्वर चेतन, सो अंतःकरण विशिष्ट अल्पज्ञ ता आदि धर्मवान् नित्य अपरोक्ष तूं है यह कहना विरुद्ध है बने नहीं; काहेतें विरुद्ध अर्थमें वक्ताका तात्पर्य होवे नहीं, यातें सार असार ह ताके कहिये ईश्वर जो जीव ई श्वरका स्वरूपतामें सार जो चेतन भाग ताकूं एक जान। महावाक्योंमें लक्षणा अंगीकार करी है, यातें लक्षणाका हेतु स्वरूप कहे हैं:- वक्ताके तात्पर्यकी अनुपपत्ति लक्ष-णाका बीज है। नैयायिक अन्वयकी अनुपपत्ति लक्षणाका बीज कहे हैं, सो बने नहीं:- काहेतें यह तिनका अभिप्रा य है, जहां वाक्यमें स्थित पदोंके अर्थोंका परस्पर संबंध न बने तहां लक्षणा होवे है; 'जैसें गंगायां ग्रामः' या वा-क्यमें स्थित जो गंगा औ ग्राम पद तिनके अर्थ जो नगर औ नदीका प्रवाह, तिनका परस्पर संबंध बने नहीं, या तें लक्षणा मानी है। या नैयायिक उक्तिका 'लष्टीः प्रवे-शय' या वाक्यमें व्यभिचार है; काहेतें भोजनके समय उत्तम पुरुषनें अन्य पुरुषकों कहा 'लष्टिका प्रवेश करा वो' इहां लष्टि पदका अर्थ जो दंड ताका प्रवेश पदार्थसें संबंध संभवेभी है, तथापि वक्ताके तात्पर्यके अभावतें

लक्षणा होवै है। यातैं तात्पर्य अनुपपत्तिहीं लक्षणामैंबी ज है औ लक्षणाके ज्ञानमैं शक्यका ज्ञान उपयोगी है, काहेतैं शक्य संबंध लक्षणाका स्वरूप है, शक्य जाने बिना शक्यसंबंधरूप लक्षणाका ज्ञान होवै नहीं, यातैं शक्यका लक्षण कहे हैं:- जा पदमैं जा अर्थकी शक्ति होवै ता पदका सो अर्थ शक्य जान। अब लक्षणाका स्वरूप कहे हैं:- शक्यका जो लक्ष्यार्थसैं संबंध सो लक्षणाका सामान्य लक्षण है। अब लक्षणाके जहती आदि भेद औ तिनके लक्षण कहे हैं:- वाच्यार्थका परित्याग करिके-वाच्यार्थका संबंधी जो अन्य अर्थ तामैं जो पदका संबंध, सो जहती लक्षणा कहिये है। जैसें "गंगामै ग्राम-है" या वाक्यमैं गंगापदका वाच्य जो प्रवाह ताकूं त्यागिके ताका संबंधी जो तीर तामैं गंगापदकी लक्षणा-है। अथ अजहति लक्षणा:- वाच्यार्थकों न त्यागिके-वाच्यार्थका संबंधी जो अन्य अर्थ तामैं जो पदका संबंध, सो अजहति लक्षणा कहिये है। 'यथा काकेभ्यो दधि-रक्षतां' किसीनें कहा काकोतें दधिकी रक्षा करना' सो मार्जारादिकोतें संरक्षण बिना दधिकी रक्षा बने नहीं, यातैं काकपदका शक्य जो वायस पक्षी, ताके संबंधी जो दधि उपघातक मार्जारादि तामैं काकपदकी लक्षणा है। अथ भाग त्याग लक्षणाका स्वरूप:- शक्य अर्थके एक भाग का परित्याग करिके शक्यअर्थके एक भागमैं जो पदका

संबंध सो भागत्याग लक्षणा कहिये है। जैसें प्रथम दृष्ट देवदत्तकूं अन्यदेशमैं देखकर कहे; 'सो यह देवदत्त है' तहां भागत्याग लक्षणा है; काहेतें परोक्षदेश अतीत काल सहित देवदत्त शरीर सो पदका अर्थ है, समीपदेश औ वर्तमानकाल सहित देवदत्त शरीर यह पदका अर्थ है; अतीत कालसहित अन्यदेश सहित जो वस्तु सोइ वर्तमानकाल औ समीप देशसहित है, यह समुदायका वाच्य अर्थ है, सो संभवै नहीं:- काहेतें अतीतकाल औ वर्तमानकालका विरोध है, तथा अन्यदेशका औ समीपदेशका विरोध है; यातें परोक्षदेश अतीत काल-रूप एक भागका त्याग करके एक भाग देवदत्त शरीरमात्रमें सो पदकी लक्षणा औ समीपदेश औ वर्तमान काल-रूप एक भाग त्याग करके, एक भाग देवदत्त शरीर मात्र में यह पदकी लक्षणा है। या रीतिसें लक्षणाके तीन भेद हैं। तिनमेंसें महावाक्यमें जहति अजहति संभवै नहीं औ भाग त्याग या रीतिसें है:- पूर्वोक्त वाक्यार्थके-विरोधतें तत्पदके वाच्यमें जो माया औ मायाकृत सर्व शक्ति सर्वज्ञता आदि धर्म, इतने वाच्य भागकूं त्यागके, चेतन भागविषै तत्पदकी भाग त्याग लक्षणा है। तैसें त्वंपदके वाच्यमें जो अविद्या अंश औ अविद्याकृत अल्पशक्ति अल्पज्ञता आदि धर्म, ताकूं त्यागके चेतनभागमें त्वंपदकी भागत्याग लक्षणा है। इस रीतिसें भागत्याग लक्ष

णातें ईश्वर औ जीवके स्वरूपमें लक्ष्य जो चेतन भाग तिनकी एकता तत्वमसि महावाक्य बोधन करे हैं। सूत्रमें - आदिपदसें ग्रहण कीये जो 'अहं ब्रह्मास्मि,' 'अयमात्मा ब्रह्म,' 'प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म' ये तीन महावाक्य, तिनमेंभी यही रीति जान लेनी ॥२९॥

५७ अब मननका स्वरूप औ फल कहे हैं:-

दोहा.

जग प्रानी विच्छेप चित, तजै दूर तिन संग ॥ बैठि इकंत स्वतंत्र है, करै मनन सर्वंग ॥ ३०॥ ॥

टीका:- यद्यपि महावाक्योंसें अभेद निश्चयतें पश्चात् कर्तव्य नहीं, तथापि पूर्वोक्त रीतिसें कहे अर्थमें जाकूं संशय होवै, सो जगत्‌में विक्षप्त चित्त पुरुषोंका संग दूरतें त्यागकर, एकांतस्थानमें स्थित होइ करके औ सर्व-ओरतें स्वतंत्र होइके, जीव ब्रह्मके अभेदकी साधक औ भेदकी बाधक युक्तियोंसें अद्वितीय ब्रह्मका चिंतनरूप मनन करै। सो युक्तियां यह हैं:- जैसें सच्चित् आनंद लक्षण श्रुतिमें आत्मा कहा है, तैसेंही सच्चित् आनंद लक्षण ब्रह्म कहा है, यातें ब्रह्मरूप आत्मा है। किंवा:-ब्रह्म नाम व्यापकका है। देशतें जाका अंत नहीं होवै सो व्यापक कहिये, तासें जो आत्मा भिन्न होवै तो देशतें अंतवाला होवैगा। जाका देशतें अंत होवै ताका कालतें-

भी अंत होवै है यह नियम है, यातें आत्मा अनित्य होवैगा। जाका कालतें अंत होवै सो अनित्य कहिये है।- यातें ब्रह्मसें भिन्न आत्मा नहीं। किंवाः– आत्मासें भिन्न जो ब्रह्म होवे तो, सो अनात्मा होवैगा, जो अनात्मा घटादिक हैं सो जड हैं; यातें आत्मासें भिन्न ब्रह्मबी जड हीं होवैगा। किंवाः– अनुमानरूप युक्ति कहे हैंः– "जीवो ब्रह्माभिन्नः चेतनत्वात् यत्र यत्र चेतनत्वं तत्र ब्रह्माभेदः यथा ब्रह्मणि"। जो वादी यामें यह शंका करे किः–जीवरूप पक्षमें चेतनत्वरूप हेतु तो है, ब्रह्माभेदरूप साध्य नहीं? या शंकाका तर्कसें प्रहार करणा, अनिष्ट आपादनका नाम तर्क है। सो यह हैः– जीवरूप पक्षमें चेतनत्वरूप हेतु मानके ब्रह्माभेदरूप साध्य नहीं मानें तो ब्रह्मके अद्वितीयताकी प्रतिपादक 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' या श्रुतिसें विरोध होवैगा, श्रुतिसें विरोध आस्तिक अधिकारीकूं इष्ट नहीं, या अनिष्ट आपादनरूप तर्कके भयतें ब्रह्माभेदरूप साध्यका अभाव वादी कहे नहीं। इस रीतिसें शंका निवृत्त होवै है। इत्यादि युक्तियांसें मनन होवै है। मननसें निवर्त्तनीय संशय शास्त्रांतरमें इस रीतिसें कहा हैः– संशय दो प्रकारका है, एक प्रमाणगत संशय है द्वितीय प्रमेयगत संशय है। प्रमाणगत संशय पूर्व कहा है। प्रमेय संशय बी आत्मसंशय औ अनात्मसंशय भेदसें दो प्रकारका है। अनात्म

संशय अनंतविध है। ताके कहनेसें उपयोग नहीं। आ त्मसंशय बी अनेक प्रकारका है:- आत्मा ब्रह्मसें अभि न्न है अथवा भिन्न है, अभिन्न होवे तोबी सर्वदा अभि न्न है अथवा मोक्षकालमे हीं अभिन्न होवे है, सर्वदा अ भिन्न नहीं, सर्वदा अभिन्न होवे तोबी आनंदादि ऐश्वर्यवान् है अथवा आनंदादि रहित है, आनंदादिक ऐश्वर्यवान् होवे तोबी आनंदादिक गुण हैं अथवा ब्रह्मात्मा का स्वरूप हैं; इसतें आदि लेके तत्पदार्थाभिन्न त्वंप दार्थविषे अनेक प्रकारका संशय है। तैसें केवल त्वंपदा र्थ गोचर संशय बी आत्मगोचर संशय है:- आत्मा दे ह आदिकोतें भिन्न है वा नहीं, भिन्न कहे तोबी अणुरूप है वा मध्यम परिमाण है वा विभु परिमाण है, विभु कहे तोबी कर्त्ता है अथवा अकर्ता है, अकर्ता है तो बी परस्प र भिन्न अनेक हैं अथवा एक है; इस रीतिके अनेक संशा- य केवल त्वंपदार्थ गोचर हैं। तैसें केवल तत्पदार्थ गो चरबी अनेक प्रकारके संशय हैं:- वैकुंठादि लोक वि- शेषवासी ईश्वर परिच्छिन्न हस्तपादादिक अवयव स- हित शरीरी है अथवा शरीररहित विभु है, जो शरीर रहित विभु है तोबी परमाणु आदिक सापेक्ष जगत्का कर्ता है अथवा निरपेक्ष कर्ता है; परमाणु आदिक निरपे क्ष कर्त्ता कहे तोबी केवल कर्ता है अथवा अभिन्न नि- मित्तोपादनरूप कर्ता है, जो अभिन्न निमित्तोपादन कहे

तौबी प्राणी कर्म निरपेक्ष कर्त्ता होणेतें विषम कारिताआ दिक दोषवाला है अथवा प्राणी कर्म सापेक्ष कर्ता होणेतें विषमकारिता आदिक दोषरहित है; इसतें आदि अनेक प्रकारके तत्पदार्थ गोचर संशाय हैं। सो सकल संशय प्रमेय संशय कहिये हैं। तिनकी निवृत्ति मननसें होवैहै ॥ ३० ॥

अब पूर्व कहे फलकूं पुनः स्पष्ट करे हैं:-

दोहा.

नितप्रति करत विचारके, स्थिरता-
पावै चित्त ॥ बोध उदय छिन छिन
करे, जान्यो नित्य अनित्य ॥ ३१ ॥

टीका:- नित्यप्रति युक्तियोंसें ब्रह्मके चिंतनरूप विचारके कियेतें प्रतिक्षण बोधकी निःसंदेहता होवैहै, तातें ब्रह्मात्माका अभेदरूप जो प्रमेय तामें चित्तकी स्थिति होवै है; काहेतें जातें ऐसें जान्या है:-नित्य कहिये ब्रह्मात्माका नित्यही अभेद है औ अनित्य कहिये ब्रह्मात्माका भेद उपाधिकृत होनेतें अनित्य है औ नित्य अर्थमेंही मुमुक्षुकी स्थिति होवै है यह नियमहै॥३१

५८ अब जगत् सत् है, आत्मा कर्ता भोक्ता है औ ब्रह्मात्माका भेद सत्य है, इस विपरीत ज्ञानरूप विपर्यके हुये कर्तव्य कहे हैं:-

दोहा.

शुद्ध स्वरूप प्रकासमें, कछु प्रवेसतां होइ ॥ साधन पाई प्रौढता, निदि ध्यासन कहि सोई ॥ ३२ ॥ ॥

टीकाः- यद्यपि श्रवण मननरूप साधनकी दृढतासें प्रमेय औ प्रमाणगत संशय तो संभवै नहीं, तथापि पूर्व अभ्यस्त वासनाके वशतें प्रकाशरूप प्रत्यक् आत्मामें जाकूं कर्तृत्व भोक्तृत्वकी प्रतीतिरूप विपर्यय होवै, सो पुरुष अनात्माकार वृत्तिरूप व्यवधान रहित ब्रह्माकार वृत्तिकी स्थितिरूप निदिध्यासन करे ॥ ३२ ॥

५९ अब निदिध्यासनका अवांतर फल कहे हैं:-

दोहा.

कामादिक समता उदै, भये सु यहि प्रकार ॥ निस आगम प्रानी सबै, होत अल्प संचार ॥ ३३ ॥ ॥

टीकाः- व्यवधान रहित ब्रह्माकार वृत्तिरूप समताके उदय भयां जो फल होवै सो कहे हैं:- जौनसीयां काम क्रोधरूप वृत्तियां पुरुषके हृदेमें पूर्व निरंतर होतीयां थीयां, सो निदध्यासनके कीये कदाचित् होवै हैं। दृष्टांतः- जैसे रात्रिके आगमनसें पुरुषोंका गमनागमनरूप संचार स्वल्प होवै है तैसें ॥ ३३ ॥

६० अब संशय विपर्ययसें रहित तत्वज्ञानके उदयभ ये कर्तव्यका अभाव कहे हैं:-

दोहा.

सनै सनै साछातता, उदय भई ज-
ब जांहि॥ हैं नाहीं स्रुभ अस्रुभ स्रु
रव, दुष नहिं दरसे तांहि॥३४॥

टीकाः- श्रवण मनन निदिध्यासनके करते हुये जब जिस महात्माकूं तत्वज्ञान उदय भया, तब ताकूं विधि निषेध नहीं है। सोइ कहा हैः-"निस्त्रैगुण्य मार्गमें जो विच रता है, ताकों को विधि है को निषेध है" औ ताकूं स्रुरव दुःरव बी अपणें आत्मामें प्रतीत होवे नहीं। यद्यपि अहं सुरवी अहं दुःरवी यह अहंकार विद्वानूमें बी प्रतीत होवे है? तथापि अहं शब्दके तीन अर्थ हैं:- एक मुरव्य अर्थ औ दो अमुरव्य हैं। पदकी श क्ति वृत्तिकर जो प्रतीत होवे सो मुरव्य अर्थ कहिये है औ लक्षणाकर प्रतीत होवे सो अमुरव्य कहिये है। तथाहिः- आभास सहित कूटस्थ अहंशब्दका मुरव्य अर्थ है। या अर्थमें अहं शब्दकूं मूढ पुरुष जोडते हैं औ अंतःकरणसहित आभास अरु कूटस्थ ये दोनों भिन्न भिन्न- अहंशब्दके अमुरव्यार्थ हैं। इनमें लौकिक शास्त्रीय व्यवहारमें अहंशब्दकूं विद्वान् क्रमकर जोडते हैं। "अहं गच्छामि अहं तिष्ठामि अहंसुरवी अहं दुःरवी"

या लौकिक व्यवहारमें अहंशब्दकूं विद्वान् साभास-अंतःकरणमें जोडता है। "असंगोऽहं चिदात्माऽहं" या शास्त्रीय व्यवहारमें अहंशब्दकूं विद्वान् कूटस्थात्मामें जोडता है। यद्यपि साभास अंतःकरण अध्यस्त है, सो सुख दुःखका आश्रय बनै नहीं, काहेतैंजो अध्यस्त होवै सो अन्यका आश्रय होवै नहीं यह नियम है। जैसें रज्जुमें अध्यस्त सर्प, अपनी गमनादि क्रियाका आश्रय बनै नहीं तैसें; तथापि अज्ञानतो शुद्धचेतनमें अध्यस्त है औ अज्ञान उपहितमें अंतःकरण अध्यस्त है, अंतःकरण उपहित जीव साक्षीमें सुख दुःखादि अध्यस्त हैं। इस रीतिसें अध्यस्त जो धर्मादिक तिनका अधिष्ठान आत्मा है। अध्यासके अधिष्ठानपनेका अंतःकरण उपाधि है, यातें साभास अंतःकरणके धर्म हैं यह कहा, धर्मादिक अंतःकरणके धर्म होवैं अथवा अंतःकरण विशिष्ट प्रमाताके धर्म होवैं अथवा रज्जु सर्प स्वप्नपदार्थोंकी न्याईं किसीके धर्म न होवैं, सर्व प्रकारसें आत्माके धर्म नहीं; यातें विद्वान्‌कूं सुख दुःख आत्मामें प्रतीत होवै नहीं, यह कहा ॥ ३४ ॥

६१ ग्रंथ अभ्यासका फल कहे हैं:-

दोहा.

चली पूतरी लवनकी, थाह सिंधु-

को लैन ॥ अनाथ आप आपे भई, पलटि कहे को बैन ॥ ३५॥ ॥

टीकाः- जैसे कोई पुरुष लवणकी पूतरीकूं रसीसें बांधके समुद्रके जल मापणे अर्थ फेंके, सो जलरूप होई पुनः जलसें बाहिर नहीं आवे है; तैसें या ग्रंथके अभ्यास कीयेतें ज्ञानद्वारा ब्रह्मकूं प्राप्त होइके पुनः जीवभावकूं प्राप्त नहीं होवे है। यह गीतामें कहा हैः-'यद्गत्वा न निवर्तंते' जिस ब्रह्ममें प्राप्त होइके पुनः नहीं निवृत्त होवे हैं'। यद्यपि मूलमें दार्ष्टांत नहीं, तथापि दृष्टांतके बलतें ताकी कल्पना करीहै ॥३५

दोहा.

अलं तुरिय विश्राम यह, साधन ज्ञान अलाप ॥ पढै याह अनयासही, लखे ब्रह्म चिद् आप ॥ ४॥ ॥

इति श्रीविचारमालायां ज्ञानसाधन वर्णनं नाम चतुर्थ विश्रामः समाप्तः ॥४॥

अथ जगत् आत्म वर्णन नाम
पंचम विश्राम प्रारंभः ॥५॥

६२ शिष्य उवाच.

दोहा.

साधन ज्ञान लह्यो भले, भगवन तुम

प्रसाद ॥ किह प्रकार आत्मा जगत,
मो मन अधिक विषाद ॥१॥ ॥

टीकाः- अर्थ स्पष्टभाव यह हैः- हे भगवन् ! आत्मामें जगत् सत्य है अथवा असत्य है, सत्य कहो तो ब्रह्मज्ञानसें ताकी निवृत्ति नहीं चाहिये औ असत्य कहो तो प्रतीत हुया नहीं चाहिये ? इस आकांक्षाके भयां, द्वितीयपक्षकूं अंगीकार कर कहे हैं ॥१॥

६३ श्रीगुरुरुवाच :-

दोहा.

अहो पुत्र कीजें नहीं, रंचक ऐसो भ
र्म ॥ कहां जगत ईश्वर कहां, यह स
ब मनके धर्म ॥२॥ ॥

टीकाः- हे शिष्य। आत्मामें जगत् सत्य है ऐसा भ्रम भूलकरबी नहीं करणा; काहेतें जगत् स्वरूपतें हैही नहीं तो तामें सत्ताका ज्ञान कैसा होवे। जातें कार्यरूप जगत्का अभाव है, तातें ताका कर्ता ईश्वर कहां है। ईश्वर जीव दोनो कल्पित हैं, यह पंचदशीमें कहा हैः- 'माया आभास करके जीव ईश्वर दोनोकूं करे है, या श्रुतिके श्रवणतें, तिन दोनोनें सर्व प्रपंच कल्प्या है' कल्पित वस्तु अधिष्टानमें अत्यंत असत् होवे है, यातें जगत् औ ईश्वरका अभाव कहा है; इनमें प्रतीति मन कृत है ॥२॥

दोहा.

राग द्वेष मनके धर्म, तूं तो मन नहि
होई ॥ निर्विकल्प व्यापक अमल,-
सुखस्वरूप तूं सोई ॥ ३॥ ॥

टीकाः- जैसें जगत्‌में सत्ता प्रतीति मनका धर्म है, तैसें तामें राग द्वेषबी मनके धर्म हैं, सो मन तूं नहीं। जो कहैं मनसें भिन्न मेरा क्या स्वरूप है? तहां सुन! निर्विकल्प कहिये तर्कसें रहित, व्यापक, मलरहित, सुखस्वरूप जो चेतनब्रह्म, सो तूं है ॥३॥

पूर्व शिष्यनें कहा जगत् असत् होवै तो प्रतीत न हुवा चाहिये, याका उत्तर कहे हैंः-

दोहा.

जग तोमैं तूं जगतमैं, यों लहि तज
हंकार ॥ मैं मेरो संकल्प तजि, सु-
खमय अवनि विहार ॥ ४॥

टीकाः- यह जगत् संपूर्ण तेरे स्वरूपमें कल्पित है। जातें कल्पितकी प्रतीति अधिष्ठान विना होवै नहीं, तातें जगत्‌में अधिष्ठानरूपतें तूंही स्थित है ऐसें जानकर, मैं कर्ता भोक्ता हूं अरु यह वस्तु मेरी है औ मैं संकल्पका कर्ता हूं, या प्रछिन्न अहंकारकूं त्यागकर, शांत चित्त हुवा, प्रारब्धके अनुसार पृथ्वीपर चेष्टाकर ॥४॥

औ जे कहो, मिथ्या जगत्‌की प्रतीति कर तत्त्व-

ज्ञानकी हानि होवैगी ? तहां सुनोः-

दोहा.

अज्ञान नींद स्वप्नो जगत्, भयो सुख दु कहूं त्रिस्य ॥ ज्ञान भयो जाग्यो ज बै, द्रष्टा दृष्टि न दृश्य ॥५॥

टीकाः- जैसें निद्रा समय स्वप्न जगत् कहुं सुखदाई प्रतीत होवे है, कहूं दुःखप्रद प्रतीत होवे है, परंतु जब पुरुष जाग्या तब स्वप्न जगत्की स्मृतिकर जाग्रत् बोधकी हानि होवे नहीं; तैसें अज्ञान रचित द्रष्टा दृष्टि दृश्यरूप जगत् तत्त्वज्ञानके हुये प्रतीतिबी होवे है, तोबी ताकर ज्ञानका बाध होवे नहीं। यह पंचदशीमें लिख्या-हैः-" बोधकर मारेहुये अज्ञान तत्कार्यरूप शत्रु,स्थितबी हैं तथापि बोधरूप चक्रवर्त्ती राजाकूं तिनोतें भय नहीं; प्रत्युत तिस कर्त्ताकी कीर्ति होवे है" ॥५॥

६२ अरु जो कहो, पूर्व रीतिसें बोधकी हानि काहेतें नहीं होवे है? तहां सुनोः-

दोहा.

छुधा पिपासा सोक पुन, हरष जन्म अरु अंत ॥ ये षट् उर्मी धर्म तन, आत्मा रहित अनंत ॥६॥ ॥

टीकाः- ये षट् उर्मी स्थूल सूक्ष्म शरीरका धर्म हैं:-क्षुधा पिपासा प्राणके धर्म हैं, शोक हर्ष मनके धर्म हैं,

जन्म मृत्यु स्थूल शरीरके धर्म हैं, औ अनंतात्मा इन षट्
ऊर्मीतें रहित विद्वान्कूं प्रतीत होवैहै; यातें आत्माका अ
संग ब्रह्मरूपसें जो ज्ञान सो निवृत्त होवै नहीं। देश काल
वस्तुकृत प्रछेदतें रहितकूं अनंत कहे हैं। ब्रह्मरूप आ-
त्मा श्रुतिमें व्यापक कहा है, यातें देशकृत परिच्छेदतें र
हित है औ अनित्य वस्तुका कालतें अंत होवै है, आत्मा
नित्यहै, यातें कालकृत परिच्छेदतें रहित है औ आत्मा
सर्व रूप है, यातें वस्तुकृत परिच्छेदतें रहित है। परि-
च्छेद नाम अंतका है ॥६॥

अब प्रसंग प्राप्त केवल स्थूल शरीरके धर्म दिखावैहैं:-

दोहा.

जन्म अस्ति अरु वृद्ध पुनि, विपनम
छय तननास ॥ षट् विकार ये देह-
के, आत्मा स्वयंप्रकाश ॥७॥ ॥

टीका:- अर्थ स्पष्ट ॥७॥

हे भगवन्! मैं जन्मता मरता हूं, इस रीतिसें ज
न्मादि षट्विकार मुजमें प्रतीत होवै हैं; आप कैसें इन-
का निषेध करो हो? तहां गुरु कहे हैं:-

दोहा.

चिदाकाश अद्वय अमल, सांत एक त
व रूप ॥ जन्म मरन कित संभवे,
कित हंकार अनूप ॥८॥ ॥

टीकाः- हे शिष्य! जो चेतन आकाश द्वैततें रहित औ मलतें रहित औ सृष्टि आदिकोंके क्षोभतें रहित औ सजातीय विजातीय स्वगत भेदरहित एक चिद्वस्तु है, सो तेरा आत्मा है, तामें जन्म मरणका संभव कैसे होवे औ उपमासें रहित तेरे आत्मामें में जन्मता मरता हुं यह अहंकार कैसे संभवे! इहां जन्म मरणके निषेधतें समग्र विकारोंका निषेध कीया ॥८॥

हे भगवन्! ए षट् विकार स्थूल देहके धर्म हैं, मेरे नहीं, परंतु मैं सुखी मैं दुःखी या रीतिसें सुख दुःखकी प्रतीति मेरे आत्मामें होवे है; यातें मैं भोक्ता हूं? तहां गुरु कहे हैं:-

दोहा.

विषय भोग इस्थान तन, साधक इंद्रिय जोय ॥ आही भोक्ता बुद्धि मन, तूं न चतुष्टय होय ॥९॥ ॥

टीकाः- शब्दादि पंचविषयरूप भोग्य है औ तिनके भोगणेका स्थान स्थूल शरीर है औ भोक्ताके प्रति तिन भोगोके निवेदन करणेवाले चक्षुरादि इंद्रिय हैं औ मन बुद्धि उपलक्षित लिंग शरीररूप भोक्ता है; तूं इन सर्वोंका प्रकाशक चिदात्मा इनतें भिन्न है, यातें भोक्ता नहीं ॥९॥

औ जे कहो बाधित अनुवृत्तिकर प्रतीयमान जो

आत्मसंबंधी स्थूल सूक्ष्म शरीर, तिनमें पुनः आत्मप्र-
तीतिहोवैगी ? यह आशंकाकर, आत्मा अनात्माके सा
दृश्यके अभावतें होवै नहीं, यह कहे हैंः–

दोहा.

कारन लिंग स्थूल तन, मन बुधि इं-
द्रियू प्रान ॥ ए जड तोहि लहैं नहीं,
तूं चैतन्य प्रमान ॥ १० ॥ ॥

टीकाः– अनिर्वचनीय अनादि अविद्यारूप का-
रणशरीर औ दशइंद्रिय औ पंचप्राण औ मन अरु बु
द्धि ए सप्तदश अवयवरूप लिंगशरीर औ अन्नमय-
कोशरूप स्थूल शरीर ये तीनो शरीर तेरी सादृश्यता
कूं पावें नहीं। जातें यह जड हैं औ तूं चैतन्य है; यातें-
सादृश्यताके अभावतें पुनः इनमें आत्मप्रतीति होवै नहीं।
जे कहो, आत्मा चैतन्य है यामें क्या प्रमाण है ? तहां सु
नोः– " य एष हृद्यंतर्ज्योतिः पुरुषः " यह श्रुति प्रमाण -
है। 'यह सर्वके अपरोक्ष हृदयके अंतर पुरुष प्रकाश
रूप है' ॥ १० ॥

६५ ननु अनात्मामें आत्मप्रतीति ज्ञानवानूकूं मत हो
वै, परंतु आत्मामें त्रिते शरीररूप अनात्मा कौन संबं
धकर प्रतीत होवै हैं यह कहो ? तहां सुनोः–

दोहा.

एक तंतुमें त्रिगुनता, उरझ ग्रंथि व

इभाय ॥ ऐसें शुद्ध स्वरूपमें, अना
थ जगत दरसाय ॥११॥ ॥

टीकाः- जैसें एक तंतूमें प्रथम तीन तागे ब-
नायके पुनः तिनकूं उरझायके ग्रंथि कहिये मणके ब
नावे हैं, सो मणके जैसें नामरूपसें तंतूमें कल्पित सं
बंधसें प्रतीत होवे हैं; तैसें शुद्धरूप चिदात्मामें त्रिते
शरीररूप जगत् कल्पित तादात्म्य संबंधसें प्रतीत हो
वे है ॥११॥

ननु लिंग शरीरादि रूप उपाधि तो मिथ्या संबंध-
सें प्रतीत होवे, परंतु तामें आभास तो सत्य है? तहां सुनोः-

दोहा.

वसन पूतरी वसनमय, नाना अंग
अनूप ॥ एक तंतु बिन नहिं बियो,
त्यों सब शुद्ध स्वरूप ॥१२॥ ॥

टीकाः- नाना कर चरणादि अंगोंसहित वस्त्र-
रूप मूर्ति औ ताके शरीरपर श्वेत पीतरूप वस्त्र हैं, सो
दोनों तंतूमें कल्पित हैं, काहेतें विचार कीये तंतूसें भि
न्न प्रतीत होवे नहीं; तैसें सब कहिये त्रिते शरीर औ
आभास, कल्पित होणेतें शुद्ध स्वरूप आत्मासें अतिरि
क्त नहीं ॥१२॥

ननु ऐसे है तो पदार्थोंसें हर्ष शोक क्यूं होवे है? ए
शंकाकर विचारविना होवे है, यह कहे हैं:-

दोहा.

देखि खिलोनें खांडके, आनंद भयो
मन मांहि ॥ चाह करी जब वस्तुकी,
तब सब लय हुइ जांहि ॥ १३ ॥

टीकाः- गज रथादि रूप खिलोन्योंकूं देखकर बिना बिचारसें पुरुषके चित्तमें आनंद होवे है, पुनः ए खांडही हैं ऐसा बिचार कियेसें खांडमें लय हुये खिलोनें आनंदके जनक होवें नहीं; तैसें विचार बिना देहादि-पदार्थ आनंदकर होवें हैं, विचारकर आत्म वस्तु रूप अधिष्ठानकूं जब जान्या तब अध्यस्त पदार्थ सर्व अधिष्ठानमें लय हुये आनंदके जनक होवें नहीं ॥ १३ ॥

६६ अब अधिष्ठान ज्ञानशून्य पुरुषोंकी निंदा करे हैंः-

दोहा.

लह्यो न सुद्ध स्वरूप जिन, कहा क
ह्यो तिन कूर ॥ साखा दल सींचत
रह्यो, जो नहिं सींच्यो मूर ॥ १४ ॥ ॥

टीकाः- जिन पुरुषोंनें निरावरण ब्रह्मरूप अधिष्ठानकूं न जानके यज्ञादि कर्मोंमें वा ब्रह्मभिन्न देवनकी उपासनामें निश्चय कीया, तो तिन पुरुषोंनें क्या निश्चय कीया ! जातें कर्म उपासनाका फल कृषी आदिकोंकी न्याईं विनाशी कहा है। जे कहो ब्रह्मकूं सर्व रूप होणेतें ब्रह्मादि देवभी ब्रह्मरूप ही हैं, यातें देवनकी उपासनाका नि

षेध बनै नहीं; तथापि अविद्या तत्कार्यकी निवृत्ति औ आनंदावाप्तिरूप मोक्ष, शुद्धब्रह्मके ज्ञानतेंहीं होवै है; यह पंचदशीमें लिख्या है तामें दृष्टांत कह्या है:- जैसें पुरुषकूं वृक्षके मूलमें जलका न सिंचन करके, शाखा औ पत्रोंमें जल सिंचनतें फलकी प्राप्ति होवै नहीं ॥१४॥

६७ ननु देवादि रूप जगत् ब्रह्ममें स्वाभाविक प्रतीत होवैहै, वा नैमित्तिक है, स्वाभाविक कहो तो, निवृत्त न हुवा चाहिये औ निवृत्त होवै है, यातें नैमित्तिक है, यह कहो सो निमित्त कौन है, यह कह्या चाहिये? तहां सुनोः-

दोहा.

जैसें सांचेमें पर्यो, होत कनक बहु अंग ॥ नानावत यों ब्रह्ममैं, लै उपाधिको संग ॥१५॥ ॥ ॥

टीकाः- जैसे मूषेके संबंधसें कटकादिरूप नानात्व कंचनमें प्रतीत होवै है, तैसें ब्रह्ममें नानात्वकी प्रतीति मायारूप उपाधिके संबंधसें होवै है ॥१५॥

६८ ननु यह कहनेमें परिणामवाद प्रतीत होवैहै, काहेतें पूर्वरूपकूं त्यागके रूपांतरकी प्राप्तिकूं परिणाम कहे हैं। जैसें शीतरूप उपाधिके संबंधसें दुग्धरूपताकूं त्यागिके दुग्ध दधिरूप होवै है; तैसें ब्रह्मभी मायारूप उपाधिके संबंधतें ब्रह्मभावकूं त्यागिके जगत् रूप परिणामकूं प्राप्त होवै, तो दुग्धादिकोंकी न्याई विकारी हुवा चाहिये?

यह शंका सिद्धांतके अज्ञाननें होवे है, काहेतें सिद्धांतमें विवर्तवाद अंगीकार कीया है। पूर्वरूपकूं न त्यागके रूपांतरकी प्राप्तिकूं विवर्त कहे हैं। ब्रह्म, अपने सत्यादि लक्षणरूप स्वरूपकूं न त्यागके आकाशादि जगत्‌रूपसें प्रतीत होवे है, या अर्थके साधक दृष्टांतोंकूं पंच दोहोंकर कहे हैं:-

दोहा.

मृद विकार मृदमय सकल, हिम विकार हिम जान ॥ तंतु विकार सु तंतु ही, यों आतम जग जान ॥ १६ ॥

देखि रज्जुमें सर्पता, ठूंठ चोरके भाय ॥ रजत विचार्यो शुक्तिमें, आयो मन ललचाय ॥ १७ ॥

भयो बघूरा वायुमें, अग्नि चिनग बहु अंग ॥ बीजहिमें तरुवर यथा, जलनिधि मध्य तरंग ॥ १८ ॥

मिश्रिकी तूंबी रची, रंग रूप ता मांहि ॥ खान लग्यो जब भर्म तजि, सो तब करुची नांहि ॥ १९ ॥

पावकमें दीपक घने, नभमें घट मठ नाम ॥ नीरमांझ ओरा भयो, यों जग आत्माराम ॥ २० ॥

टीकाः- पांच दोहोंका अर्थ स्पष्ट भाव यह है :- जैसे घटादि मृदादिकोंका विवर्त होनेतें मृदादिरूप हैं; तैसें सर्व जगत् ब्रह्मका विवर्त होनेतें ब्रह्मरूप है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

६९ दोहा.

सत्य कहों तो है नहीं, मिथ्या कहों तु
आहि ॥ कह अनाथ आश्चर्य महा,
अकह कह कहिय काहि ॥ २१ ॥

टीकाः- पूर्वोक्त विवर्तरूप जगत्, सत्य कहें तो बने नहीं, काहेतें तीनकालमें जाका बाध न होवे सो सत्य कहिये है। प्रपंचका अधिष्ठान ज्ञानतें बाध निश्चय होवे है, यातें मिथ्या कहणा संभवे है। मिथ्याकूंही अनिर्वचनीय कहे हैं। जो किसी वचनका विषय न होवे ताकूं अनिर्वचनीय नहीं कहे हैं; किंतु सत्य असत्यतें विलक्षणका नाम अनिर्वचनीय हैं। रूपवान् औ प्रातीतक सत्ताका आश्रय सत्य विलक्षण शब्दका अर्थ है औ असद्विलक्षण कहिये बाधके योग्य ऐसा घटादि सर्व प्रपंच है। जे कहो अधिष्ठानका स्वरूपभी कह्या चाहिये ? तहां सुनोः- सो आश्चर्यरूप है, काहेतें सर्वकूं प्रकाशता हुवा बी आप किसीका विषय होवे नहीं; यातें वाणीकर कह्या जावे नहीं ॥ २१ ॥

सोरठा.

भयो सु पंचम सांत, जगदात्मका ए
कत्व कहि ॥ पढै होइ हत भ्रांत, ज
गदात्मा चिद् एक लहि ॥ ५ ॥ ॥

इति श्रीविचारमालायां जगत् आत्मा वर्णनं नाम पंचम विश्रामः समाप्तः ॥ ५ ॥

अथ जगत् मिथ्या वर्णन नाम

षष्ठ विश्राम प्रारंभः ॥ ६ ॥

७० अब षष्ठे विश्राममें जगत्का अत्यंताभाव दिखाय वे अर्थ, प्रथम शिष्यका प्रश्न लिखे हैं:- शिष्य उवाच.

दोहा.

भो भगवन् मो मन भयो, संसय देहु
निवार ॥ जग मिथ्या किहिविध क-
ह्यो, मोप्रति कहो विचार ॥ १ ॥ ॥

टीका:- हे भगवन् ! पूर्व आपनें जगत्कूं मिथ्या जिस रीतिसें कहा है, यह अर्थ मेरी बुद्धिमें आरूढ भया नहीं; यातें मेरे चित्तमें संदेह है ताकी निवृत्ति अर्थ आप पुनः सो विचार कहो। जातें संदेह दूर होवे ॥ १ ॥

७१ अब शिष्यके संदेह दूर करणे अर्थ, विद्वानूकी दृष्टिमें अविद्या तत्कार्यरूप जगत् अत्यंत असत्य है यह कहे हैं, काहेतें यह शास्त्रमें कहा है:- "गुरुमुखान्-

तत्वमस्यादि महावाक्यके श्रवण कीये उदय भयी जो ब्रह्माकार वृत्ति, ता वृत्तिके उदयमात्रतेंहीं कार्यसहित अविद्या न पूर्व थी, न अब है, न भविष्यत् होवेगी, यह तिस विद्वान्कूं प्रतीत होवे है; या अर्थके साधक दृष्टांतोंकूं कहे हैं :- श्री गुरुरुवाच ॥ जग मिथ्या दरसावतहैं:-

दोहा.

सीतल जल मृगतृष्णाको, गगन कमलकी बास ॥ सुंदर अति वंध्या सुमन ॥ ऐसें जगत प्रकास ॥ २ ॥ ॥

टीकाः- जैसे वासिष्टमें मूर्ख बालककी प्रसन्नता अर्थ धात्रीने भविष्यत् नगरकी कथा श्रवण करवाई है, तैसें किसीने कहा मरूस्थलका जल अति शीतल है - औ आकाशके कमलमें अति सुगंधि है औ वंध्याका पुत्र वस्त्रों भूषणोके सहित सुंदर स्वरूपवान् है। हे शिष्य ! ए पदार्थ जैसें अत्यंत असत्भी अर्थाकार प्रतीत होवे हैं, तैसें अत्यंत असत् जगत् अर्थाकार प्रतीत होवेहै ॥२

पूर्वोक्त अर्थके साधक दृष्टांतोकों सप्त दोहोंकर कहे हैं:-

दोहा.

ज्यों नभमें कल्पी घनी, पूतरि विविध अनेक ॥ करत युद्ध अति क्रोध युत, ऐसो जगत विवेक ॥ ३ ॥ ॥

अनाथ स्वप्न काहू नरहीं, दिसनविषें भ्रम होय ॥ पूरव तज पश्चिम गयो, तिह विषाद जग सोय ॥ ४ ॥ ॥
रविकी रस्मि समेटिके, करी गुंथ रुचि माल ॥ पहिरे वंध्याको स्रमन, सोभा बनी बिसाल ॥ ५ ॥ ॥
ससे सृंगको धनुषकरि, गगन पुरुष लिये जाय ॥ देखि माल लालच लग्यो, पुन पुन मागत ताहि ॥ ६ ॥
वह मांगत वह देत नहिं, बढी परस्पर रार ॥ ना कछु भयो नहैं कछू, ऐसो जगत विचार ॥ ७ ॥ ॥
गगन सिंधुकी लहरि ले, आन बनायो धाम ॥ ऐसें पूरन ब्रह्ममें, देखि-जगत अभिराम ॥ ८ ॥ ॥
मृगतृष्णाको नीर लै, सींच्यो नभ अंभोज ॥ ता स्रुगंध आई सरस, आहि जगत यह खोज ॥ ९ ॥ ॥
टीकाः- अर्थ स्पष्ट भाव यह हैः- जैसें आकाशादिकोमें पुरुषकल्पित पुतली आदि पदार्थ अत्यंत असत् हैं, तैसें ब्रह्ममें आकाशादि प्रपंच अत्यंत असत्य है ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

७२ अब स्थूणा खनन न्यायकर पूर्वोक्त अर्थके दृढ क रणेकों, तामें शिष्य शंका करै हैः- शिष्य उवाच.

दोहा.

जगत् जगत् सबको कहै, अरु पुनि दे
षिय नैन ॥ सो मिथ्या किहि विध क
हो, आरतजन सुख दैन ॥ १० ॥

टीकाः- हे आरत जनोंकूं सुख देणेवाले श्रीगुरो! संपूर्ण श्रुति स्मृति वचन जगत्का सद्भाव कहे हैं। पुनः प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकरभी जगत् प्रतीत होवै है, आप जगत् कूं अत्यंत असत्य किस रीतिसें कहो हो। जे जगत् अ-त्यंत असत्य होवै तो, उत्पत्ति प्रतिपादक 'यतो वा इमा नि भूतानि जायंते,' 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः' इत्यादि वाक्य हैं, वे विषयके अभावतें व्यर्थ हो वैंगे। 'जातें निश्चय करके ये भूत उत्पन्न होवै हैं,' 'ब्रा ह्मण प्रतिपाद्य वा मंत्र प्रतिपाद्य आत्मातें आकाश उत्पन्न होवै है' यह तिनका अर्थ है। प्राप्त सत् वस्तुका निषेध होवै है, जगत् अत्यंत असत् होवै तो निषेध प्रतिपादक 'तरति शोकमात्मवित्' इत्यादि वाक्य बी व्यर्थ होवैंगे औ कार्यके अभावतें कारणरूप ईश्वरका अंगीकार बी नि ष्फल होवैगा; इत्यादि अनेक शंका मेरेतांई होवै हैं सो आप निवृत्त करो ॥ १० ॥

७३ जगत्का अत्यंताभावरूप जो उत्तम सिद्धांत,-

ताकूं हृदयमें धरके गुरु, जगत्का अनिर्वचनीयत्व दिखावते हुये शिष्यकी शंकाका समाधान करे हैं, दो दोहों करः- श्रीगुरुरुवाच.

दोहा.

रज्जु देखि प्रानी घने, कल्पैं बहुत प्रकार ॥ को तरुजर को सरप कहि, को कहि पुहमिदरार ॥ ११ ॥ ॥
सुक्ति निरखि बहु भेद लहि, प्रानी कल्पैं ताहि ॥ को भोडर को रजत कहि, को कहि कागर आहि ॥१२॥ ॥

दो दोहोंकी एकठी टीकाः- हे शिष्य! जैसें रज्जुका सामान्यरूप इदंताकूं देखके बहुत पुरुष बहुत अनिर्वचनीय पदार्थोंकी कल्पना करें हैंः- कोउ कहैं है यह वृक्षकी जड है, कोउ सर्प कहे है, काहूकूं पृथिवीकी रेखा प्रतीत होवै है। तथा शुक्तिके सामान्य इदं अंशकूं देखके स्वस्व संस्कारके अनुसार अनेक पदार्थोंकी कल्पना करे हैंः-कोउ अबरक कल्पे है, कोउ रजत, कोउ कागदकी कल्पना करे है। यह सर्प रजतादि समग्र पदार्थ अनिर्वचनीय उत्पन्न होवें हैं। अनिर्वचनीय ख्यातिका संक्षेपतें यह प्रकार हैः- सर्प संस्कारसहित पुरुषके दोषसहित नेत्रका रज्जुसें संबंध होवै है औ रज्जुका विशेष धर्म रज्जुत्व भासे नहीं औ रज्जुमें जो मुंजरूप अवयव हैं सो भासें नहीं,

किंतु रज्जुमें सामान्यधर्म इदंता भासे है। तैसें शुक्तिमें स्फटिकत्व औ नीलपृष्ठता त्रिकोणता भासे नहीं, किंतु सामान्य धर्म इदंता भासे है; यातें नेत्रद्वारा अंतःकरण रज्जुकूं प्राप्त होइके इदमाकार परिणामकूं प्राप्त होवे है; ता इदमाकार वृत्ति उपहित चेतन निष्ट अविद्याके सर्पाकार औ ज्ञानाकार दो परिणाम होवे हैं। तैसें दंड संस्कार सहित पुरुषके दोषसहित नेत्रका रज्जुके संबंधसें जहां वृत्ति होवे, तहां दंड औ ताका ज्ञान अविद्याके परिणाम होवे हैं। माला संस्कारसहित पुरुषके सदोष नेत्रका रज्जुसें संबंध होइके इदमाकार वृत्ति होवे, ताकी वृत्ति उपहित चेतनमें स्थित अविद्याका माला औ ताका ज्ञान परिणाम होवे है। जहां एक रज्जुसें तीन पुरुषनके सदोष नेत्रनका संबंध होइके सर्प दंड माला एक एकका तिन्हकूं भ्रम होवे, तहां जाकी वृत्ति-उपहितमें जो विषय उपज्या है सो ताहीकूं प्रतीत होवे है अन्यकूं नहीं। इस रीतिसें रज्जु शुक्ति आदिकोमें सर्प रजतादि औ तिनके ज्ञान अनिर्वचनीय उत्पन्न होवे हैं ॥१२॥

अब दृष्टांतकरि कहे अर्थकूं दार्ष्टांतमें जोडे हैं:-

दोहा.

पूरन अद्वय आत्मा, अव्यय अचल अपार ॥ मिथ्या ही कल्प्यो घनो,

तामैं यह संसार ॥१३॥ ॥

टीकाः- व्यापक, द्वैतसैं रहित, नाशतैं रहित, क्रियासैं रहित, देश परिच्छेदतैं रहित जो आत्मा, ता के बोधअर्थ, श्रुतिने तामैं यह नानारूप संसार मिथ्या कल्प्या है। मिथ्याकूं ही अनिर्वचनीय कहे हैं। या पक्षकूं अंगीकार कियेसैं पूर्वोक्त सर्व शंका निवृत्त होवै हैं; काहेतैं अनिर्वचनीय जगत्की उत्पत्ति कथन संभवै है, यातैं उत्पत्तिबोधक वाक्य निष्फल होवैं नहीं, तथा अधिष्ठान ज्ञानसैं ताकी निवृत्ति बी संभवै है, यातैं निवृत्तिबोधक वाक्य निष्फल होवैं नहीं औ अनिर्वचनीय जगत्की अनिर्वचनीय कारणताके संभवतैं ईश्वरका अंगीकार बी संभवै है ॥१३॥

७४ दोहा.

आन भिन्न नहिं तोयतैं, बुद बुद फेन तरंग ॥ याप्रकार संसार यह, सद्‌ स्वरूप अभंग ॥१४॥ ॥

टीकाः- बुदबुदे फेन लहरी यह जलतैं भिन्न सत्य नहीं, तैसैं यह संसारबी सद्‌ स्वरूप अधिष्ठान आत्मातैं भिन्न सत्तावाला नहीं; काहेतैं अध्यस्तकी-सत्ता अधिष्ठानतैं भिन्न होवै नहीं, यह नियमहै॥१४॥

ननु अधिष्ठानतैं अध्यस्तकी भिन्न सत्ता न होवै तो, देहादि अध्यस्त पदार्थोंमैं गमनागमनादि व्य-

वहार न हुवा चाहिये ? यह आशंकाकर कहे हैं :-

दोहा.

पूरन आतममें जगत, कंचन मुहर प्रकार ॥ अद्वय अमल अनूप अज, मुद्रा नाम असार ॥ १५ ॥ ॥

टीकाः- यद्यपि पूर्णात्मासें जगत् अनन्यरूपबी है तथापि जैसे कंचनमें अनन्यरूप मोहरतें संख्या परिणाम त्याग आदानादि व्यवहारकी सिद्धि होवेहै तैसें आत्मासें अनन्यरूप देहादि सर्व पदार्थोंमें गमनागमन, त्याग, आदानादि व्यवहारकी सिद्धि होवे है । अन्य स्पष्ट ॥ १५ ॥

ननु अधिष्ठानसें अनन्यरूप देहादि पदार्थोंसें व्यवहार सिद्ध होवे तो अधिष्ठान विकारी हुवा चाहिये ? सो शंका बने नहीं:- काहेतें शुद्ध ब्रह्मरूप अधिष्ठानसें देहादिकोंका संबंध नहीं; यह कहे हैं :-

दोहा.

काष्ठमें रहिटा भयो, रहिटामें भयु फेर ॥ पन्यो तूल ता फेरमें, भयो सूतको ढेर ॥ १६ ॥ ॥

वसन भयो ता सूतमें, पूतरि वसन मझार ॥ आपसमें पूतरि सबे, करत परस्पर रार ॥ १७ ॥ ॥

काष्टको अरु रारको, कहो कहां सं
बंध ॥ तन विकार यों ब्रह्ममें, क
ल्पैं प्रानी अंध ॥१८॥ ॥

टीकाः— तीन दोहोंका अर्थ स्पष्ट भाव यह हैः-
जैसें काष्टका औ वस्त्रमें पूतलियोंके युद्धका परस्पर
कछु संबंध नहीं; तैसें काष्ठस्थानापन्न शुद्ध ब्रह्ममें,-
काष्टमें चरखेकी न्याई कल्पित माया औ तामें कार्यकी
अभिमुखतासें तमो प्रधानतारूप फेर औ तामें तूल-
स्थानी पंच आकाशादि सूक्ष्म भूत, तिनतें सूतस्थानी
पंच स्थूलभूत, तिनमें ताणे पेटे स्थानी पचीस प्रकृति,
तिनतें चतुर्दश लोक रूप वस्त्र, तामें पुतलियां स्थानी दे
व मनुष्यादि चार खाणीमें होणेवाले शरीर, तिन शरी
रोंके जन्मादि विकार, असंग ब्रह्ममें संभवै नहीं। जे
कहो अज्ञानी तामें कल्पना करै हैं? तहां सुनोः—
जैसें सूर्यमें उलूककर कल्पे अंधकारसें सूर्यकी क्षिति
नहीं; तैसें अज्ञोंकर कल्पित विकारोंसें ब्रह्मकी शुद्धता
बिगरे नहीं ॥१६॥१७॥१८॥

७५ ननु जगत् हैही नहीं तो अधिष्ठान ज्ञानतें निवृ
त्त क्यूं होवे है? तहां सुनोः—

दोहा.

ब्रह्म रतन निर्मोल निज, तामें क्रांति
अनंत ॥ है नाहीं कहत न बने, ऐसो

जग दरसंत ॥१९॥ ॥

टीकाः- जैसें अमोलिक जो रत्नमणि, तामें जो अनंत क्रांति प्रतीत होवे हैं, सो ता रत्नमणितें भिन्न हैंही नहीं तो। तिनकी निवृत्ति कहना कैसें बने। तैसें ब्रह्ममें जगत् हैंही नहीं तो! ताकी निवृत्ति कैसें कहें। जे कहो वेदांत शास्त्रमें तत्वज्ञानसें जगत्‌की निवृत्ति कही है? सो नित्य निवृत्तकी निवृत्ति कही है। जैसें रज्जुमें सर्प नित्य निवृत्त हैं, तथापि ताके ज्ञानसें नित्य निवृत्त सर्पकी निवृत्ति होवे है॥१९॥

पूर्व कहे अर्थकूं अन्य दृष्टांतकर दृढ करे हैंः-

दोहा.

कहि अनाथ कासों कहों, आद्य म
ध्य अरु अंत॥ ज्युं रविमें नहिं पाइ
ये, निसि वासरको तंत॥२०॥

टीकाः- स्वामी अनाथजी कहे हैंः- अधिष्ठान चेतनमें जगत् स्वरूपसें है नहीं तो, ताके उत्पत्ति औ स्थिति औ नाश कैसे कहें। जैसें सूर्यमें रात्रि औ दिनका स्वरूप नही पाईता तो, तिनकी उत्पत्ति आदिक कैसें बने॥२०॥

दोहा.

षष्ठम जगत असत कहत, भयो सु अं
तर ध्यान॥ सह विलास अज्ञान ह-

न, नष्ट होत जिम ज्ञान ॥६॥ ॥

इति श्रीविचारमालायां जगत् मिथ्या वर्णनं नाम षष्टो विश्रामः समाप्तः ॥६॥

अथ शिष्य अनुभव वर्णनं नाम
सप्तम विश्राम प्रारंभः ॥७॥

७६ अब सप्तम विश्राममें गुरुके प्रति नमस्कार करके शिष्य, गुरुकृत उपकारकूं सूचन करता हुवा, गुरुद्वारा ज्ञात अर्थकूं प्रगट करै हैः-शिष्य उवाच.

दोहा.

वारंवार प्रनाम मम, श्रीगुरु दीन
दयाल ॥ जगत भ्रम बडु नास्यो,
स्रुनि तव वचन रसाल ॥१॥ ॥

टीकाः- हे दयालो श्रीगुरो! करुणारसके सहित आपके वचनकूं श्रवण करके, जगत् रूप भ्रम मेरा निवृत्त भया है, तातें आपके प्रति वारंवार मेरा नमस्कार है। ननु गुरुद्वारा अमोलक तत्वज्ञानकूं पाइकर कोइ अपूर्व पदार्थ भेट धर्‍या चाहिये, केवल नमस्कार उचित नहीं ? सो शंका बनै नहीं:- काहेतें या प्रपंचमें दो पदार्थ हैं, एक अनात्म पदार्थ है, अपर आत्म पदार्थ है। तिनमें अनात्म पदार्थ असत् जड दुःख रूप होनेतें अति तुच्छ है, दैने योग्य-

नहीं, अपर जो आत्म पदार्थ है, सो गुरोंके प्रसादनें प्राप्त भया है, तामै प्रदानादि कियाके अभावतेंबी दिया जावै नहीं। यातें नमस्कारही बनै है ॥५॥

पुनः गुरुकृत उपकारकूं शिष्य प्रगट करे हैः—

दोहा.

भो भगवन तुम प्रयातें, भयो वि-
गत संदेह ॥ स्वच्छ स्वरूप लह्यो भ
ले, विसर्यो देह अदेह ॥२॥ ॥

टीकाः— हे भगवन् ! आपके प्रसादतें प्रमाण प्रमेयगत संदेहतें रहित, सर्व विकारशून्य, चैतन्य, आनंदरूप, आत्माकूं भली प्रकार मैनें जान्या है। जो पूर्व विस्मरण भयाथा। अब देहमें स्थित हुवाबी, देह संबंधतें रहित हूं; जैसै मथनकर दधिसें प्रथक् कीया नवनीत, तक्रमें स्थित हुवाबी तासें भिन्न रहे है ॥२॥

७७ अब शिष्य, अपना अनुभव प्रगट करे हैः—

दोहा.

अज्ञ तज्ञ नहिं स्वभास्वभ, नहिं ईश्व
र नहिं जीव ॥ सत्त जूठ मोमें नहीं,
अमल समल त्रिय पीव ॥३॥ ॥

टीकाः— हे भगवन् ! मामें अज्ञानी हूं, काहेतें अज्ञान जाकूं होवे सो अज्ञ कहिये है औ ज्ञान जा-

कूं होवे सो ज्ञानी कहिये है। सो अज्ञानादि सप्त अवस्था आभासकी हैं, सो चिदाभासरूप जीव में नहीं, यातें विधिनिषेध बी मुझपर नहीं। जीवत्वके अभावतें मायामें अभासरूप ईश्वर बी मुजपर नहीं, काहेतें सत् स्वरूप मुझमें मिथ्या पदार्थ कैसे बनै! शुद्ध अंतःकरण जिज्ञासु औ मलिन अंतःकरण रूप विषयी बी में नहीं। औ स्त्री पुरुष भाव बी मुझमें नहीं, स्थूल शरीरका धर्म होणेतें ॥ ३॥

पुनः स्थूल शरीरनिष्ठ धर्मोंका आत्मामें अभाव दिखावे हैः—

दोहा.

आश्रम बरन न देव नर, गुरु सिख धर्म न पाप ॥ पूरन आत्मा एक रस,
नहिं घट बढ माप अमाप ॥ ४ ॥

टीकाः— ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ औ संन्यासः ए चतुर आश्रम औ ब्राह्मणादि चार वर्ण, देवभाव औ मानुषभाव औ गुरु शिष्य भाव औ पुण्य पापरूप क्रिया, ए समग्र स्थूल शरीरका धर्म होणेतें मुजमें नहीं; काहेतें मैं पूर्णात्मा औ अविकारी हूं, वृद्धि औ क्षयसें रहित हूं औ ह्रस्व दीर्घ भावतें बी रहित हूं। यही ध्यान दीपमें कहा हैः—" वर्णाश्रमादि धर्म, देहविषे मायाकर कल्पित हैं; बोधरूप आ-

त्माके नहीं, यह विद्वान्का निश्चय है" ॥४॥

अब सूक्ष्म शरीरादि प्रपंचका आत्मामें अभाव दिखावै हैं:-

दोहा.

मन बुद्धि इंद्रिय प्रान नहि, पंचभूत हूं नांहि ॥ ज्ञाता ज्ञान न ज्ञेय कछु, नहिं सबहूं सब मांहिं ॥ ५ ॥

टीका:- मनादि सप्तदश अवयवरूप लिंग शरीर औ आकाशादि पंचभूत औ साभास अंतःकरणरूप ज्ञाता औ अंतःकरणका परिणाम साभास वृत्तिरूप ज्ञान औ घटादि विषयरूप ज्ञेय; ए संपूर्ण मेरे आत्मामें वास्तव नहीं औ मैं सर्वमें स्थित हूं। सो गीतामें कहा है:- "योगकर जीत्या है मन जिसनें, सो महात्मा, सर्व भूतोमें आपणे आत्माकूं स्थित देखता है औ सर्व भूतोंकूं आपणे आत्मामें अभिन्न देखता है" ॥५॥

सोरठा.

मैं चैतन्य स्वरूप, इंद्रजालवत जगत यह ॥ मैं तूं कथा अनूप, यह वह कहत न संभवै ॥ ६ ॥

टीका:- जांतें मैं चैतन्य आत्मा हूं औ यह जगत् इंद्रजालकी न्याई मिथ्या है, तातें मैं पंडित हूं, तूं

मूरखे हैं, यह हमारा शत्रु है, वे मित्र है, यह जो उपमातें शून्य जगत् संबंधी कथा है; सो मेरे आत्मामें कैसे बनै। यह जगत् इंद्रजालकी न्याई मिथ्या, यह तृप्तिदीपमें कहा हैः- " यह द्वैत, अचिंत्य रचना रूप होनेतें मिथ्या है " ॥ ६॥

पुनः आत्मामें देहादि पदार्थोंका अभाव कहे हैः-

दोहा.

देही देहन हों कछू, मुक्त बन्द नहिं होय॥ यतीन विषयी तप अतप, ना हों एक न दोय॥ ७॥ ॥
पूर्व पश्चिम ऊर्द्ध अध, उत्तर दच्छिन नाहिं॥ लघु दीर्घ न्यारो मिल्यो, नहिं बाहिर नहि माहिं॥ ८॥ ॥
नहि उत्पत्ति न वृद्ध लय, रूप रंग रस भेद॥ नहिं योगी भोगी नहिं, नहिं स्थीर नहीं षेद॥ ९॥ ॥

टीकाः- तीन दोहोंका अर्थ स्पष्ट भाव यह हैः- यद्यपि देहादि पदार्थ सर्वकूं आपणे आत्मामें प्रतीत होवे हैं तथापि उत्तम भूमिकामें आरूढ विद्वानकूं आपणे आत्मामें प्रतीत होवें नहीं॥ ७॥ ८॥ ९

७८ ननु एकहीं आत्मामें विद्वानतें भिन्न अन्योकूं देहादि प्रतीत होवे है औ विद्वानकूं होवें नहीं

यह कथन बनै नहीं ? तहां सुनोः-

दोहा.

मलिन नयनकरि देखिये, सब क
छु सबहि भाय ॥ अमल दृष्टि जब
रवि लख्यो, तब रविहिं दरसाय ॥१०

टीकाः- जैसें जलादि उपाधि दृष्टिकर देखिये तब प्रतिबिंबताकर आदित्यमें अनेकता औ चंचलता आदि सर्व विकार प्रतीत होवै हैं जब उपाधि दृष्टिकूं त्यागके सूर्यकी ओर देख्या तब अद्वितीय प्रकाशरूप आदित्यहीं प्रतीत होवै है ॥१०॥

अब दृष्टांतकर कहे अर्थकूं दार्ष्टांतमें जोडे हैंः-

दोहा.

ऊच नीच निरगुन गुनी, रंक नाथ अ
रु भूप ॥ हूं घट बढ कासों कहूं, स
ब आनंद स्वरूप ॥११॥

टीकाः- वर्णाश्रमकर यह ऊच है, तथा यह नीच है, यह दैवी संपत्तिसें रहित पामर है, यह उत्तम जिज्ञासु है, यह धनके अभावतें कंगाल है, यह ग्रामाधीश है, औ यह राजा हमारेकर पूज्य है, ऐसी प्रतीति अज्ञानरूप उपाधिके बलकर अज्ञोंकूं होवै है; परंतु निरावरण आत्माके साक्षात्कारवाला जो मैं, सो पूर्व उक्त रीतिसें किसके प्रति अधिक न्यू

न कहूं; जातें सर्व मोकूं आनंदस्वरूप भतीत होवे हैं। सो कहा है हरितत्वमुक्तावलिमें:- "परमात्माके ज्ञानसें देह अभिमानके निवृत्त भये, जहां जहां विद्वानूका मन जावै, तहां तहां अद्वितीय ब्रह्महीं देखे-है" ॥११॥

जगत्‌की भतीतिमें मुख्य कारण अज्ञान कहा। अब अवांतर कारण मन कहे हैं:-

दोहा.

मन उन्मेष जगत् भयो, बिन उनमेष नसाय॥ कहो जगत कित संभवै, मनहीं जहां विलाय॥१२॥

टीकाः- मनके फुरनेसें जगत् भतीत होवे है-औ मनके शांत भये जगत् भतीत होवै नहीं। जे कहो यह कैसे निश्चय होवे? तहां सुनोः- जाग्रत्-स्वप्नमें मनके सद्भावतें स्थूल सूक्ष्म जगत् भतीत-होवे है औ सुषुप्तिमें मनके विलयतें जगत् भतीत होवे नहीं; या अन्वय व्यतिरेक युक्तिसें जगत् प्रतीतिमें मनकी कारणता निश्चय होवे है। जहां ब्रह्मरूप ज्ञात अधिष्टानमें मनकाही अभाव निश्चय होवे है, तहां जगत्‌की भतीति कैसें संभवै॥१२॥

७९ पूर्व कहे अर्थकूं पुनः प्रगट करे हैं:-

दोहा.

नहीं कारन कार्य कछु, नहि न काल नहि देस ॥ सिव स्वरूप पूरन अचल, सजाति विजाति न लेस ॥ १३॥ ॥

टीकाः- कल्याण स्वरूप, विभु, क्रियासें रहित, मेरे आत्मामैं; कार्यकारण भाव नहीं, काहेतें मृत्तिकादिकोंकी न्याई कारण सावयव हीं होवै है, मैं निरवयव हूं, यातें कारण नहीं । औ घटादिकोंकी न्याई जो कार्य होवै सो अनित्य होवै है, मैं नित्य हूं यातें कार्य नहीं । तथा सजातीय विजातीय स्वगत भेद ब्रह्मरूप आत्मामैं नहीं, काहेतें जैसें पटका पटमें भेद सो सजातिकृत भेद है । तैसें ब्रह्मके सदृश अन्य ब्रह्म होवै, तब सजातिकृत भेद ब्रह्ममें होवै, ब्रह्मके सदृश अन्य ब्रह्म नहीं, यातें ब्रह्ममें सजातिकृत भेद नहीं । जैसें पटमें घटका भेद है सो विजातिकृत भेद है, तैसें ब्रह्मके समान सत्तावाला कोऊ विजाति नहीं, यातें ब्रह्ममें विजातिकृत भेद नहीं । यद्यपि जीव ईश्वर, ब्रह्मसें विजाति हैं, तिनोका भेद ब्रह्ममै बनै है; तथापि जीव ईश्वर मायिक होणेतें मिथ्या हैं, यातें तिनोका भेद ब्रह्ममें नहीं । यह पंचदशीमैं कहा है औ जैसें पटमै तंतुका भेद है सो स्वगत भेद है। तैसें ब्रह्म सावयव नहीं, या-

तें ब्रह्ममें स्वगत भेद नहीं ॥१३॥

८० ननु ता अधिष्टानका स्वरूप कहा चाहिये? तहां सुनोः-

दोहा.

एकहुं कहत बनै नहीं, दोइ कहों कि
हि भाय ॥ पूरनरूप विहायसी, घ
ट बढ कह्यो न जाय ॥१४॥ ॥

टीकाः- एकत्व संख्यावाचक एक शब्दकी हीं नाम जाति गुण क्रियाके अभावतें ब्रह्ममें प्रवृत्ति बनै नहीं, तौ द्वित्व संख्यावाचक दो शब्दकी प्रवृत्ति कैसे बनै! काहेतें गुण क्रिया आदिक हीं शब्द प्रवृत्तिके निमित्त हैं, सो ब्रह्ममें नहीं, यातें जैसें होवै तैसें पूर्णरूपकूं त्यागकर अधिक न्यून भाव ब्रह्ममें कह्या जावै नहीं ॥१४॥

अब त्रिने शरीर औ अवस्थाके अभिमानी विश्वादिकोंका आत्मामें निषेध करे है:-

दोहा.

विश्व न तैजस प्राज्ञ कछु, नहिं तुरि
या ता मांहि ॥ स्वस्वरूप निज ज्ञान-
घन, मैं तूं विव तहं नांहि ॥१५॥

टीकाः- तुरीय नाम साक्षीका है। अन्य स्पष्ट ॥१५॥

८१ अब उक्त अर्थमें शंकाकों कहे हैं:-

दोहा.

जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिके, अभिमानी
जे आहि ॥ जो सबको अनुभव करै,
सिव स्वरूप कहि ताहि ॥१६॥ ॥

टीका:- ननु पूर्व साक्षीका निषेध कीया सो बनै नहीं, काहेतें जाग्रत्‌का अभिमानी विश्व, स्वप्न-का अभिमानी तैजस, सुषुप्तिका अभिमानी प्राज्ञ, जाग्रतादि अवस्थाके सहित सर्वकूं जो प्रकाशै ताकूं शास्त्रोंमें शिवस्वरूप कहा है; यातें ताका निषेध बनै नहीं ॥१६॥

८२ अब वक्ष्यमाण दोहेकर या शंकाका समाधान करै हैं:-

दोहा.

साधन साध्य कछू नहीं, नाथ सिद्ध न
हिं कोय ॥ प्रमान प्रमाता को कहै,
अनाथ प्रमेय न होय ॥१७॥ ॥

टीका:- जाकर साध्यकी सिद्धि होई सो साधन औ साधनकर सिद्ध होयवे योग्य साध्य औ साधनकर साध्यकी प्राप्तिवाला सिद्ध औ प्रमाण प्रमाता प्रमेयरूप त्रिपुटी या साक्ष्यके अभावतें साक्षी धर्मका निषेध कीया है; स्वरूपसें चैतन्यका निषेधनहींकीया १७

पुनः यही अपवाद कहे हैं :—

दोहा.

सास्ता सास्त्र स्रु को नहीं, नहिं भिच्छु
क नहिं दान ॥ देस न काल न वस्तु गु
न, वादी वाद न हान ॥१८॥ ॥
विधि निषेध नहिं थप अथप, नहिं प्रभु
नहिं को दास ॥ केवल स्रुद्ध स्वरूप हौं,
पूरन स्रुतह प्रकास ॥१९॥ ॥

सोरठा.

ध्याता ध्यान न ध्येय, मम निज स्रुद्ध
स्वरूपमें ॥ उपादेय नहिं हेय, सर्वरू
प सबतें परे ॥२०॥ ॥

टीकाः— अज्ञानके अभावतें मुझपर शिक्षा कर
णेवाला औ शास्त्र नहीं औ जिज्ञासाके अभावतें मैं भि
क्षुभी नहीं औ उदारताके अभावतें दानी नहीं औ हृ
दय कंठ नेत्ररूप देश, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिरूप काल,
स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर वस्तु, औ सत्वादि तीन गु
ण बी मुझमें नहीं । वाद करनेवाला औ वितंडा जल
पा अध्यात्मादि वाद औ ताकर होवै जो जय पराजय,
सोबी नहीं ॥१८॥१९॥२०॥

८३

दोहा.

कह्यो शिष्य अनुभव सबै, रह्यो मौन

गहि मौन ॥ बोले दास अनाथ क
हि,सद्गुरु शिष्य तन जोय ॥ २१ ॥

टीकाः- स्वामी अनाथदासजी कहे हैंः- शिष्य, गुरुद्वारा अनुभव करे समग्र अर्थकों कहकर, सो मौनकूं अंगीकार कर स्थित भया। तब गुरु, शिष्य की ओर देखकर शिष्यकी परीक्षा अर्थ, वक्ष्यमाण रीतिसें बोलते भये ॥२१॥

दोहा.

स्वतें शिष्य अनुभव भयो, इति अ
ष्टम प्रति आख ॥ गुरु यामें संका
करें, उत्तर तिन प्रति भाष ॥ ७ ॥

इति श्रीविचारमालायां शिष्य अनुभव वर्णनं नाम सप्तमो विश्रामः समाप्तः ॥७॥

अथ आत्मवान् स्थिति वर्णन नाम
अष्टम विश्राम प्रारंभः ॥८॥

८४ अब अष्टम विश्राममें कथन करना जो अर्थ, ताकी सूचक ग्रंथकारकी उक्ति आदिमें लिखे हैंः-

दोहा.

अनुभव अमृत शिष्यके, उदय भयो
चित्त चैन ॥ लैन परीच्छाकों कहैं,
गुरु करुणा रस बैन ॥ १ ॥ ॥

टीका:- अद्वितीय निश्चयरूप अमृतके उदय भयेसैं शिष्यके हृदयमैं आनंदका आविर्भाव भया है वा नहीं, या संदेहकी निवृत्तिरूप परीक्षाके अर्थ गुरु, करुणा रससैं मिले वक्ष्यमाण वचन कहे हैं। ननु महावाक्यरूप प्रमाणजन्य ज्ञानके उदय भये आनंदका आविर्भाव अवश्य होवै है, तामैं संदेह संभवै नहीं? तहां सुनो:- जैसैं नवीन कंटकका आकार यथावत् प्रतीतबी होवै है, तौभी कोमलतारूप प्रतिबंधके सद्भावतैं ता कंटकसैं वेधनादिरूप कार्य होवै नहीं। तैसैं एकवार महावाक्यके श्रवणकर उदय भये तत्वज्ञानसैं, संशयादिरूप प्रतिबंधके सद्भावतैं आनंदाविर्भावरूप कार्यकी सिद्धि होवै नहीं। यातैं तामैं संदेह संभवै है ॥ १ ॥

अब परीक्षाका प्रकार कहे हैं:-

दोहा.

परछा निज विज्ञानकी, लेत खंडव्य
वहार ॥ इस्थिति आतमवानकी, उ
पदेसत निरधार ॥ २ ॥ ॥

टीका:- विद्वान्‌की प्रवृत्तिरूप व्यवहारके निषेधद्वारा गुरु, शिष्यके ज्ञानकी परीक्षा करे हैं:- काहेतैं भिक्षा भोजन औ कोपीन आच्छादनके ग्रहणतैं अधिक प्रवृत्ति विद्वानकी भोग्योंमैं होवै नहीं; यह

पक्ष बहुत ग्रंथोमैं लिख्या है। या पक्षकूं आश्रयकर के गुरु, ज्ञानवान्की उदासीनतारूप स्थितिकूं अज्ञ औ मुमुक्षु औ. बद्धज्ञानीतें भिन्नकर उपदेश करैहैं॥२॥

८५ श्रीगुरु, वक्ष्यमाण वचन कहे हैं:– श्रीगुरुरुवाच.

दोहा.

जो कहि करहिं कहा विषय, भयो- ज्ञान उद्योत ॥ विषय संग मति भंग है, ज्ञान सिथिलता होत ॥ ३ ॥

टीका:– हे शिष्य! जेकर तूं ऐसे कहे, एकवार महावाक्यके श्रवणतें ज्ञानके उदय भये पुनः विषयोमैं प्रवृत्तिसैं मेरी क्या हानि है, यह तेरा कथन संभवे नहीं; काहेतें विषयोंके संबंधसैं तत्त्वविचार वती बुद्धि नष्ट होवे है औ विचारके अभावतें ज्ञानवस्तुमैं संदेह रूप शिथिलता ज्ञानमें होवे है ॥ ३॥

अब योग्यताके अभावतें विद्वान्की प्रवृत्तिका अभाव दिखावे हैं:–

दोहा.

जान्यो अविनाशी अजर, अद्वय रूप अपार ॥ जग आसक्ति न संभवे, सुन शिष्य सत्य विचार ॥ ४ ॥ ॥

टीका:– हे शिष्य! महावाक्यके श्रवण कर नित्य नवीन औ नाशतें रहित प्रत्यक् आत्माकूं जब प्र

च्छेदतें रहित अद्वय आनंदरूप जान्या, तब भोगरूप जगत्‌में आसक्ति संभवै नहीं। जैसें चक्रवर्ती राजाकों ग्रामाध्यक्षके भोगकी इच्छा बनै नहीं तैसें। जे कहे चित्त निरालंब रहे नहीं, तो सत्य वस्तुके चिंतनरूप विचारकूं निरंतर कर ॥ ४॥

अब व्यतिरेक मुखसें ज्ञानवान्‌की प्रवृत्तिका अभाव कहे हैं:—

दोहा.

शुद्ध स्वरूप लख्यो नहीं, उद्यो न निर्मल ज्ञान॥ मलिन विषय व्यवहार रति, तब लग होत अजान ॥ ५ ॥

टीकाः— तबलगहीं अज्ञ पुरुषकी अविद्याके कार्य शब्दादि विषयोमें औ कायिक वाचिक मानसिक क्रियामें प्रीति होवै है, जबलग संशय विपर्ययसें रहित तत्त्वज्ञानकर अपने आत्माकूं ब्रह्मरूप नहीं जाने है। जैसें खल खाणेमें पुरुषकी रुचि तबलग होवै है, जबलग यथारुचि पायसादि उत्तम भोजनोकी प्राप्ति नहीं होवै है ॥ ५॥

पुनः विधिमुखकर प्रवृत्तिका अभाव कहे हैं:—

दोहा.

जो पूरन आतम लख्यो, तौ क्यों रति व्यवहार ॥ सोऽहं जान स्फहोत क्यों,

जगजन दीन प्रकार ॥ ६॥ ॥

टीकाः- हे शिष्य! जो तूं ऐसे कहे, मैं आत्मा कूं पूर्ण ब्रह्म रूप जान्या है, मुझपर विधि निषेध कहां है; तो प्रवृत्तिरूप व्यवहारमेंभी प्रीति बने नहीं, काहेतें जाके आनंदके लेशतें सारा विश्व आनंदित है सो आनंद स्वरूप ब्रह्ममें हूं ऐसें जिसने जान्या है, सो महात्मा संसारी जीवोंकी न्याई दीन क्यूं होवे है, अर्थात् नहीं होवे है ॥ ६॥

ऐसें ज्ञानके साधनोपर ग्रंथोंका तात्पर्य कह कर, अब शिष्यके प्रति विषयोंतें उपराम करे हैं:-

दोहा.

मुक्ति विषय वैराग जो, बंधन विषय स्नेह ॥ यह सब ग्रंथनको मतो, मन मानै स्रू करेह ॥ ७॥ ॥

टीकाः- हे शिष्य! विषयोंमें जो वैराग है सो-मोक्षका साधन होनेतें मोक्षहीं है औ विषयोंमें जो स्नेह है सो बंधका हेतु होनेतें बंधन है। सो कहा है ग्रंथांतरमें:-"बद्धो हि को यो विषयानुरागी को वा विमुक्तो विषये विरक्तः" विषयोमें अनुराग बंध है औ विषयोंमें वैराग्य मोक्ष है" औ रागो लिंगम बोधस्य चित्तव्यायामभूमिषु" चित्तके विचरनेकीयां भूमियां जो शब्दादिक विषय, तिनमें जो राग है सो अ-

ज्ञानका चिन्ह है"। यातें बी ज्ञानवान्की प्रवृत्तिका-अभावहीं निश्चय होवै है। सर्व ग्रंथोंका या अर्थमैं हीं तात्पर्य है; इनमैसें जामैं तेरी रुचि होवै सो कर। यद्यपि पूर्वोक्त सर्व ग्रंथ, ज्ञानके मुख्य साधन वैराग्यकी प्रधानताके कहनेतें मुमुक्षुपर हैं औ शिष्य अद्वैत-निष्ठाकूं प्राप्त भया है, यातें ताप्रति यह कथन संभवै नहीं; तथापि 'वादी भद्रं न पश्यति' वादी पुरुष कल्याणकूं नहीं देखे है'। या न्यायकर, गुरुने शिष्यके सिद्धांतमैं आशंका करी है, यातें यह कथन संभवै है ॥७॥

अब गुरुकी दयालुताकूं प्रगट करते हुये ग्रंथकार कहे हैं:-

दोहा.

कृपा करत सिषपर घनी, गुरु सरना ईराइ ॥ इस्थिति आतमवानकी, कहि पुन पुन दरसाई ॥८॥ ॥

टीकाः- जातें गुरु शरणागत पालकोमैं मुख्य-हैं, तातें शिष्यपर बी बहुतसी कृपा करतेहुए ज्ञानवान्की उदासीनतारूप स्थितिकूं दृष्टांतोसैं वारंवार कहे हैं ॥८॥

अब अधिष्ठानतें भिन्न जगत्मैं सत्य बुद्धिके अभावतें बी विद्वान्की प्रवृत्ति संभवै नहीं, यह कहे हैं:-

दोहा.

जैसें भूंजे अन्नमें, उद्भवता भई छी-
न॥ तैसें आतमवान्‌की, भई ज
गत मति लीन ॥९॥ ॥

टीकाः- जैसें केवल वह्निकर पक्व अन्नमें अं कुर उत्पन्न करनेका सामर्थ्य रहे नहीं, तैसें अधिष्ठानके ज्ञानकर ज्ञानवान्‌की जगत्‌में सत्यत्व बुद्धिके अभावतें प्रवृत्ति संभवे नहीं ॥९॥

ननु ज्ञानवानोंकी निष्ठा भिन्न होनेतें काहूकी-प्रवृत्तिमें निष्ठा होवे है, काहूकी निवृत्तिमें निष्ठा होवे है; यातें केवल निवृत्ति कथन ज्ञानवान्‌की संभवे नहीं, यह कहे हैं:-

दोहा.

अनाथ सुज्ञानी कोटिको, निश्चय नि
जमत्त एक॥ एक अज्ञानीके हिये,
वरतत मते अनेक॥१०॥ ॥

टीकाः- अनंत ज्ञानीयोंका स्वरूपमें निष्ठारूप मत्त निश्चयकर एकही है, अरु जे कहो निष्ठारूप मत्त कवन है? तहां सुनोः- श्लोक " किं करोमि क्व गच्छामि किं गृण्हामि त्यजामि किं॥ आत्मना पूरितं सर्वं महा कल्पांबुना यथा" जैसें महाकल्पमें जलकर सर्व स्थान पूर्ण होवे हैं, तैसें मेरे आत्माकर सर्व पूर्ण

हैं; तातें मैं क्या करों, कहां जावों, क्या गृहण करों, औ किसका त्याग करों "। सर्व विद्वानोंका यही निश्चय है औ एक अज्ञानीके हृदेमैं अनेक निश्चय होवे हैं सो कहे जावें नहीं, काहेतें वसिष्टजीने रामचंद्रके प्रति कहा है:– " हे राम ! मुझसें आदि लेके सर्व ज्ञानवानोका-अद्वितीय निश्चय है औ अज्ञानीयोंके निश्चयकूं हम नहीं जानते" ॥१०॥

ननु स्वकृत ज्ञानवान्‌की प्रवृत्ति मत होवो, परंतु परकृत प्रवृत्ति संभवै है ? यह आशंकाकर उत्तर कहे हैं:-

दोहा.

सेवा बहुत प्रकार पुन, अंग त्रास करै कोय ॥ ज्ञानी आपनपो लहै, तृप्त कुस नहिं होय ॥११॥ ॥

टीकाः– ननु स्वकृत विद्वान्‌की प्रवृत्ति मत होवो, परंतु कोऊ श्रद्धालु पुरुष वस्त्र भोजनादिकों कर विद्वान्‌के शरीरकी सेवा करे, पुनः कोऊ निर्दय पुरुष-अपने स्वभावके वशातें लष्टिकादिकोंके प्रहारतें विद्वान्‌के शरीरमैं पीडा करे, तिनके प्रति वर शापके अर्थ प्रवृत्ति संभवे है ? सो शंका बनै नहीं:– काहेतें जैसें पुरुषका हस्तरूप अवयव, मुखरूप अवयवकी पालना करे है, औ दंतरूप अवयव जिव्हारूप अवयवकूं-काटे; तब पुरुष सर्वकूं अपने अवयव जानके क्रोधादि

करे नहीं। तैसें ज्ञानवान्‌की सेवा करनेवालेकूं औ पीडा कर्त्ताकूं अपने अवयव जाने है; यातें तृप्त कुपित होवै नहीं। अथवा आपनपो लहै, याका यह अर्थ है:- ज्ञानवान् सुख दुःख अपने पूर्वकृतका फल जाने है, यातें तृप्त कुपित होवै नहीं। सो कहा है अध्यात्ममें:- "अपणे पूर्वले इकत्र करे कर्मही सुख दुःखके कारन हैं" ॥११॥

नन्नु अध्यात्मादि तीन तापोंकी निवृत्तिअर्थ विद्वान्‌की प्रवृत्ति संभवे है? तहां सुनोः-

दोहा.

सांतरूप तिनकों जगत, जे उर सांत महंत॥ त्रिविध ताप निजउर जरत, ते जग जरत लहंत॥१२॥

टीकाः- अज्ञानके सद्भावतें अध्यात्मादि तीन तापोंकर जिनके चित्त तपायमान हैं ते अज्ञ पुरुष सर्व जगत्‌कूं तपायमान देखे हैं, तिनकी हीं तापोंकी निवृत्तिअर्थ प्रवृत्ति संभवे है; औ जे महानुभाव अज्ञानकी निवृत्तिद्वारा सर्व इच्छाउंकी निवृत्तितें शांत चित्त हैं तिन विद्वानोकों सर्व जगत् सुखरूप प्रतीत होवे है; यातें तापोंकी निवृत्ति अर्थ विद्वान्‌की प्रवृत्ति संभवे-नहीं। सो तृप्तिदीपमें कहा है:- "जब यह विद्वान् आपणे आत्माकूं इस रीतिसें जानता है 'यह प्रत्यक् अभि-

न्न ब्रह्म मैं हुं 'तब किसकी इच्छा करता हुवा औ किस की कामनाअर्थ शरीरकूं आश्रय करके तपायमान-होवै है" ॥१२॥

ननु अंतर सुखकी उपलब्धिसैं विद्वान्कूं सर्व जगत् सुखरूप प्रतीन होवै, तौ विषयी औ उपासककूंबी सुखकी उपलब्धिसैं सर्व जगत् सुखरूप प्रतीत हुवा चाहिये? तहां सुनोः–

दोहा.

विषयानंद संसार है, भजनानंद हरिदास ॥ ब्रह्मानंद जीवन्मुक्त, भई वासना नास ॥ १३ ॥ ॥

टीकाः– विषयी पुरुषोंको सृक् चंदन वनिता-आदि विषयोंकी समीपतासैं आनंद होवै है, यातैं क्षण एक है औ उपासक पुरुषकूंबी धेयाकार वृत्तिरूप भजनद्वारा आनंदका लाभ होवै है, सोबी प्रयत्न साध्य होनेतैं सदा रहे नहीं, यातैं तिन दोनोंकूं सुख अभाव कालमैं जगत् सुखरूप प्रतीत होवै नहीं औ जीवन्मुक्त विद्वान्कों सर्व वासनाके अभावतैं ब्रह्मानंद निरावरण प्रतीत होवै है, आनंदस्वरूप ब्रह्मकूं सर्वरूप-होनेतैं विद्वान्कूं सर्व जगत् सुखरूप प्रतीत होवै है ॥१३॥

पूर्व कहे अर्थकों पुनः प्रपंचन करे हैंः–

दोहा.

मुक्त्यादिक इच्छा नहीं, निस्पृह परम
पुमान ॥ आत्मस्वरूप नित तृप्त जे,
तिन समान नहिं आन ॥१४॥ ॥

टीकाः- जे महात्मा मुक्तिकी इच्छातें रहित हैं, आदि शब्दकर ज्ञान औ ज्ञानके साधन श्रवणादिकोंकी इच्छातें रहित हैं, औ निस्पृह कहिये या लोक पर लोकके भोगोंकी इच्छातें रहित हैं, जातें आत्मानंदकर नित्य तृप्त हैं; ते सर्वोत्कृष्ट पुरुष हैं। यातें आन जे विषयी औ उपासक हैं ते तिनके तुल्य नहीं ॥१४॥

पूर्व कही जो विद्वान्की निस्पृहता, तामें हेतु कहे हैं:-

दोहा.

दृष्ट पदारथ को भयो, जिनके सहज
अभाव ॥ कहा गहै त्यागै कहा, छू-
ट्यो चाव अचाव ॥१५॥ ॥

टीकाः- जिन महात्मोंकी अधिष्ठानके ज्ञानकर दृश्य पदार्थोंके अभाव निश्चयतें ग्रहण त्यागकी इच्छा निवृत्त भयी है, ते विद्वान् किसका ग्रहण करें औ किसका त्याग करें ॥१५॥

ननु बाधितानुवृत्तिकर विद्वानकों पदार्थोंकी प्रतीति न होवै, तो जीवन उपयोगी भिच्छा अशनादि व्यवहारकी सिद्धि होवै नहीं, बाधित पदार्थोंकी प्रतीति स्वी-

कार होवै, तो प्रतीतिके विषय पदार्थोंमें इच्छा अवश्य होवैगी । ताका अभाव संभवै नहीं ? या शंकाके उत्तरकाः–

दोहा.

जैसें दिनकरके उदे, दीपक द्युति दुरि
जात ॥ तैसें ब्रह्मानंदमें, आनंद स
बैं बिलात ॥१६॥ ॥

टीकाः– जैसें आदित्यके उदय भये, कोटि दीपकोंका प्रकाश आदित्य प्रकाशके अवांतर वर्तें है। तैसें विषयानंदादि समग्र आनंद, विद्वान्कूं ब्रह्मानंदके अवांतर प्रतीत होवै हैं; या अभिप्रायतें ब्रह्म भिन्न पदार्थोंमें इच्छाका अभाव कहा है। बाधित अनुवृत्तिकर पदार्थोंकी अप्रतीतिसैं नहीं ॥१६॥

ननु परमत निश्चय करणेअर्थ, न्यायादि शास्त्रोमें विद्वान्की प्रवृत्ति संभवै है ? तहां सुनोः–

दोहा.

गरुड तहां वाहन सबैं, रस सब अ
मी समीप ॥ ज्ञानदिवाकरके उदे,
सब मत व्है गये दीप ॥१७॥ ॥

टीकाः– जातें गरुडका वेग अश्वादि सर्व वाहनोसें अधिक है, तातें सर्व वाहन गरुडके अवांतर हैं औ चंद्रद्वारा अमृतके अंशकी प्राप्तितें ओषधियोंमें म-

धुरादि रस होवै हैं. यातें सर्व रस अमृतके अंतर्भूत हैं, (८ आदित्य औ दीपकका दृष्टांत पूर्व खोल्या है।) तैसें न्यायादि सर्व मतोंका पर्यवसान अद्वैत निश्चयरूप-ज्ञानसें इस रीतिसें विद्वानूनें निश्चय कीया हैः- पूर्व मीमांसा यज्ञादि कर्मोंके उपदेशतें अंतःकरणकी शुद्धि द्वारा ज्ञानका हेतु है औ सांख्य शास्त्र त्वं पदार्थके शोधनद्वारा ज्ञानमें उपयोगी है औ न्यायवैशेषिक बुद्धिकी सूक्ष्मतासें मननद्वारा ज्ञानमें उपयोगी हैं औ चित्तकी एकाग्रताद्वारा पातंजलशास्त्र ज्ञानका हेतु है औ उत्तर मीमांसा तत्वज्ञानकी उत्पत्तिमें साक्षात् हेतु है। इस रीतिसें साक्षात् वा परंपरासें सर्व मतोंका पर्यवसान तत्वज्ञानमें विद्वाननें सारग्राही दृष्टिसें निश्चय कीया है; यातें ताकी ज्ञानसें उत्तर कर्तव्य बुद्धिकर किसी शास्त्रमें प्रवृत्ति संभवै नहीं ॥१७॥

८९ अब प्रसंगकूं समाप्त करते हुये ग्रंथकार कहे हैंः-

दोहा.

हेतु परिच्छाके सुगुरु, षंड्यो जगव्यवहार ॥ कहत शिष्य आनंदयुत, वस प्रारब्ध अधार ॥१८॥ ॥

टीकाः- ग्रंथकार उक्तिः- सद्गुरुनें शिष्यके निःसंदेह तत्वज्ञानकी परीक्षाअर्थ, विद्वान्के भिक्षा आच्छादन ग्रहणतें अधिक व्यवहारका निषेध कीया;

तब प्रसन्न मनवाला हुवा शिष्य, वक्ष्यमाण वचनोंसें कहे हैः- प्रारब्धाधीन विद्वान्के शरीरकी स्थिति औ भोग्य होवैं है, याका यह अभिप्राय हैः- विद्वान् पर वेदकी आज्ञा तो है नहीं, जातें विद्वान्के व्यवहारका नियम होवै, किंतु प्रारब्धकर्मके अनुसार विद्वान्का व्यवहार होवै है। सो प्रारब्ध अनेकविध हैः- किसी विद्वान्का अधिक प्रवृत्तिका हेतु प्रारब्ध है, यथा जनक आदिकोंका, किसी विद्वान्का निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध है, यथा वामदेव आदिकोंका, इस रीतिसें विद्वान्के व्यवहारमें नियम नहीं ॥१८॥

८७ आसक्तिपूर्वक क्रियाबंधनका हेतु होवै है सो ज्ञानीके है नहीं यातें ज्ञानवान्की प्रवृत्ति स्वभाविक होनेतें बंधनका हेतु नहीं, या अर्थकों शिष्य कहे है :—

शिष्य उवाच.

दोहा.

भगवन आतमवान जे, लीलावत्त करे
भोग ॥ वस्तु बुद्धि कछु ना गहे, धी-
रजवान अरोग ॥१९॥ ॥

टीकाः- हे भगवन्! जो ज्ञानवान् है सो पूर्वले अदृष्टजन्य स्वभावके वशतें कर्तृत्व अभिमानतें विना भोगोमें प्रवृत्त होवै है औ चिद् जड ग्रंथिके अभावतें सत्य बुद्धिकर प्रवृत्त होवै नहीं; काहेतें धैर्यादि गुण संयु

क है औ अविद्यारूप रोगसें रहित है ॥ १९॥

ननु मिथ्या बुद्धिसें ज्ञानवान्‌की प्रवृत्तिबी अज्ञानीकी प्रवृत्तीकी न्याई बंधनका हेतु है, यह शंका होवै है; ताका उत्तर कहो? तहां सुनोः-

दोहा.

अज्ञानी आसक्त मति, करै सु बंधन हेत ॥ ज्ञानीकै आसक्ति नहीं, तजै न कछु गहि लेत ॥ २० ॥

टीकाः- अज्ञानी सर्व व्यवहार कर्तृत्व अभिमानकर करे है, यातें ताकों बंधनका कारन है औ ज्ञानवान्‌कों कर्तृत्व अभिमान है नहीं, यातें स्वरूप दृष्टिसें न किसीका ग्रहण करे है औ न त्याग करे है; यातें ताकी प्रवृत्ति ही संभवे नहीं तो बंधनकी शंका कैसे बनै ॥ २० ॥

८८ ननु कर्तृत्व अभिमान ज्ञानीकूं काहेतें नहीं? या शंकाके होया विद्वान्‌की दृष्टिमें कर्ता भोक्ता जीव नहीं, या अर्थकों दो दोहोंकर दिखावे हैः-

दोहा.

हौं अबोध अनंत गति, परस्यो चित्त समीर ॥ बहु कलोल तामै उठैं, नाना रूप सरीर ॥ २१ ॥

चित्त वात भयो सांत अब, जीव लहरि भइ लीन ॥ केवल रूप अनंत हौं, रह्यो

स्रुभास्रुभ हीन ॥२२॥ ॥

टीका:- देश प्रच्छेदतें रहित समुद्ररूप स्वमहिमामें स्थित मेरे आत्मामें, अघटन घटन पटीयसी-मायाकर, चित्तरूप वायुके संबंधसें, देव तिर्यक् मनुष्यादि शरीररूप बहुत लहरियां तामें उत्पन्न भयी। याका यह अभिप्राय है:- शरीरोंके अभिमानी चिदाभासरूप जीव उत्पन्न भये। अब गुरुमुखवात् विचारित महावाक्यतें तत्वज्ञानकर, चित्तरूप वातकी निवृत्तितें चिदाभास जीवरूप लहरियोंकी निवृत्तिकर, पूर्व उक्त देश परिच्छेदरहित शुद्धात्मा स्वमहिमामें स्थित हूं। इस रीतिसें कर्ता भोक्ताके अभावतें ज्ञानवान्‌की शुभाशुभमें प्रवृत्ति होवै नहीं ॥२१॥२२॥

८९ औ जे कहो विद्वान्‌की दृष्टिमें कर्ता भोक्ताका अभाव काहेतें है? तहां सुनो:-

दोहा.

इंद्रादिक इच्छा करैं, निश्चल पद सु
अगाध ॥ तहां ज्ञानिकी स्थिति स
दा, मैं तूं यह वह बाध ॥२३॥

टीका:- जा अक्रिय औ अगाध पदकी प्राप्तिकी इंद्रादिक देवता बी इच्छा करै हैं औ जामें मैं गुरु हों, तूं शिष्य है, यह तुजकूं कर्तव्य है, यह याका फल है, इत्यादि प्रत्ययोंका बी बाध है; तहां ज्ञानवान्‌की

निरंतर स्थिति होणेतें, विद्वान्कूं कर्त्ता कर्म क्रियारूप त्रिपुटी प्रतीत होवे नहीं ॥२३॥

पुनः ता चिद्वस्तुकेहीं विशेषण कहे हैं:-

दोहा.

जाग्रत् स्वप्न तहां नहीं, जहं सुषुप्ति
मन लीन ॥ मैं तूं तहां न संभवे, आ
तम निश्चय कीन ॥२४॥ ॥

टीकाः- जा पूर्व उक्त चिद्वस्तमें जाग्रत् स्वप्न अवस्थाका अभाव है औ जा सुषुप्ति अवस्थामें मनका विलय होवे है ताका बी अभाव है औ जामें मैं तूं यह भावना बी होवे नहीं, ताहि चिद्वस्तकों विद्वाननें अपना आत्मा निश्चय कीया है ॥२४॥

९० ननु ज्ञानूवान् अनेक तरांके व्यवहारकर्ते प्रतीत होवे हैं, यातें तिनके फलकर भी बंधायमान होवेंगे ? तहां सुनोः-

दोहा.

ज्ञानिकरे अनेक कर्म, विधिवत जग
व्यवहार ॥ लिपे न धूमाकास ज्यों,
जान्यो जगत असार ॥ २५॥ ॥

टीकाः- ज्ञानवान् यद्यपि देह इंद्रिय मनके-धर्म जानकर विधिपूर्वक अनेक यज्ञादि कर्म करे है, औ खान पान लेन देनादिक लौकिक व्यवहार करे है;

तथापि जैसें धूमादिकोंकर आकाश मलिन होवै नहीं, तैसें ज्ञानवान् कर्मोंके फलकर बंधायमान होवै नहीं, काहेतें जातें सर्व जगत्‌कों मिथ्या जान्या है ॥२५॥

९१ अब योगी ज्ञानीकी निष्ठा कहे हैं:-

दोहा.

जाग्रत माहिं सुषुप्तिसी, मतवारेकी
केल ॥ करै चेष्टा बालज्यों, आत्म
सुख रह्यो झेल ॥ २६ ॥ ॥

टीका:- अष्टांग जोगके अभ्यासकर उपरतिकी दृढतातें विद्वान्‌कों जाग्रत् व्यवहारमें इष्टानिष्टकी विस्मृति सुषुप्तिके तुल्य होवै है। जे कहो इष्टानिष्टके ज्ञान विना विद्वान्‌का व्यवहार कैसें सिद्ध होवै है? तहां सुनो:- जैसें उन्मत्त पुरुष क्रीडा करै है औ बालक जैसें इष्टानिष्टके ज्ञानविना चेष्टा करै है, तद्वत् विद्वान्‌भी प्रवर्तै हैं। उन्मत्त औ बालकतें विद्वान्‌का भेद कहे हैं:- विद्वान् निरावरण आत्मानंदकूं अनुभव करै है ॥२६

९२ अब विद्वान्‌कूं इष्टानिष्ट पदार्थकी प्राप्तिसें हर्ष शोकका अभाव कहे हैं:-

सोरठा.

स्वप्न राव भयो रंक, प्रान तजै तहं छु
धा वस ॥ जागे वही प्रयंक, कह वि

स्मय कहु हर्ष पुनि ॥२७॥ ॥

टीकाः- जैसें कोउ राजा, सेजापें शयन करे, तहां निद्रामें ऐसा स्वप्न देखे, मैं कंगाल हों, अन्नके अलाभतें क्षुधाकर मेरे प्राण जावें हैं, तब अदृष्ट बलतें जागकर देखे मैं राजा हों, सेजापर पड्या हों, तब सो राजा जैसें राज औ कंगालताके लाभतें हर्ष-शोककूं नहीं भजे है; तद्वत् विद्वान्‌बी जान लेना ॥२७

९३ अब प्रकरणकी समाप्ति करतेहुये ग्रंथकार, शिष्यका सिन्द्धांत कहे हैं:-

दोहा.

आस्तिक नास्तिक नहिं कछू, नहिं तहं एक न दोय ॥ लघु दीरघ नहिं अगुन गुन, चिद् स्वरूप मम सोय ॥२८

टीकाः- अर्थ स्पष्ट ॥२८॥

दोहा.

अगह अगोचर एकरस, निरवचनी निरवान ॥ अनाथ नहीं को भूमिका, जा पर कथिये ज्ञान ॥२९॥ ॥

टीकाः- ग्रंथकार उक्ति, शिष्य कहे हैः- मेरा-स्वरूप कर्म इंद्रियोंकर ग्रहण होवे नहीं, तथा ज्ञान इंद्रियोंका विषय नहीं, इसीतें एकरस है औ किसी वचनका विषय नहीं औ जामें सर्व दुःखोंका अभाव है

ऐसा है। औ किसी भूमिकाका क्रम होवै तिसमैं तो कथन भी संभवै, ज्ञानकी सप्तभूमिकाकी कल्पना तामैं नहीं, यातें तहां प्रश्न उत्तर रूप कथन संभवै नहीं॥२९
९४ अब शिष्यके सिद्धांतकों श्रवण करके गुरु, शिष्यकी प्रशंसा करे हैं:- श्रीगुरुरुवाच.

दोहा.

धन धन सिष्य उदार मति, पायो मतो अनूप ॥ स्रु गुरु षोज लीनो भले, भयो स्रुस्रुद्द स्वरूप ॥३०॥

टीका:- ग्रंथकार उक्ति:- स्रुष्ठु गुरोनें शिष्यके सिद्धांतमें शंका करके भली प्रकार निश्चय कीया जो शिष्यकी ब्रह्मरूपसें स्थिति भइ है, तब गुरु कहे-हैं:- हे शिष्य! जातें तें अनूप ब्रह्ममें स्थिति पाइ है, तातें तूं धन्य कहिये स्रुतकृत्य है, याहीतें उदार बुद्धि है ॥३०॥

९५ अब समग्र ग्रंथकर, कहे समग्र अर्थकों संग्रह कर दो दोहोंसें कहे हैं:-

दोहा.

स्रुनि विचार ठहराइ हो, विसर वाक्य थकि जाय॥ अनाथ विवेकी जानि है, गायब बाजी पाय ॥३१॥

टीका:- ग्रंथकार उक्ति:- विवेकी कहिये चतुष्टय

साधन संपन्न अधिकारी, जब श्रवण करे औ मनन करे औ श्रवण करे अर्थमें वृत्तिकी स्थिति रूप निदिध्यासन करे औ विसर वाक्य थकिजाय कहिये निदिध्यासनकी परिपाक अवस्था रूप समाधि करे; तब बाजी पाय कहिये जेसें बाजीगर अपणी मायाकर छपन होवे है, तैसें गायब कहिये सविलास अज्ञानकर आच्छादित्त चैतन्यकूं जाने है ॥ ३१ ॥

९६ **दोहा.**

यह विचार माला सरस, बहुविध रच्यो विचार ॥ साधन सिद्ध प्रगट किये, अनाथ भले प्रकार ॥ ३२ ॥

टीकाः- यह तत्त्वका विचार, मालाके सादृश्य मुमुक्षुकरि निरंतर करणीय है । अर्थ यह हैः- जेसें जप कर्ता पुरुषने निरंतर माला फेरीती है, तैसें मुमुक्षनें निरंतर तत्वका विचार करणा । याहीतें सो विचार नाना युक्तियोसें कहा है । जो कहो, सो विचार कह्या चाहिये? तहां सुनोः- साधन कहिये विवेक, वैराग्य, षट्संपत्ति, मुमुक्षुता, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, तत्त्वंपदार्थोका-शोधन, औ श्रोत्र संबंधी महा वाक्य अरु सिद्ध कहिये तिनोका फल ब्रह्मात्माका अभेद निश्चय रूप विचार. सो या ग्रंथमे हमने भली प्रकार कह्या है ॥ ३२ ॥

९७ अब ग्रंथका असाधारण अधिकारी कहे हैंः-

दोहा.

बंध्यो मान चाहत छुट्यो, यह निश्चय मन मांहि ॥ विचारमाल तांपर रची, अज्ञ तज्ञ पर नांहिं ॥ ३३॥ ॥

टीकाः- यद्यपि अधिकारी पूर्व कहा है, इहां कहणेका कछु प्रयोजन नहीं, तथापि सो भाषा औ शारीरकादि संस्कृत वेदांत ग्रंथोका साधारण कहा है औ इहां वक्ष्यमाण अभिप्रायसें या भाषा ग्रंथका असाधारण अधिकारीके कथन अभिप्रायसें पुनः कहा है। सो अभिप्राय यह हैः- मैं अविद्या तत्कार्यकर बंधायमान हूं यातें किसी प्रकारसें छूटूं, यह निश्चय जाके अंतःकरणमे है औ शारीरकादि संस्कृत ग्रंथोके विचारणेमैं सामर्थ्य नहीं, ऐसा जो मंद बुद्धिवाला मुमुक्षु है, तापर यह विचारमाला ग्रंथ है। अज्ञ जो विषयी औ पामर हैं औ तज्ञ जो ज्ञातज्ञेय विद्वान् हैं तिनपर नहीं ३३

९८ अब मुमुक्षुकी प्रवृत्ति अर्थ, तीन दोहोंकर या ग्रंथकी प्रशंसा करे हैं:-

दोहा.

और माल रतनादि जे, घात होत तिन हेत ॥ अद्भुत माल विचार यह, तस्कर वस करि लेत ॥ ३४॥ ॥

षट् दर्सनकी माल जे, अपनो पच्छ

लिये जु ॥ द्वैत रहित रुचि माल यह,
सोभत सबन हिये जु ॥ ३५॥
राव रंक मन भावती, वरनाश्रम सुख
दैन ॥ रुचि विचारमाला रची, चि
तवत अति चित चैन ॥ ३६॥ ॥

टीकाः- जोगी जंगम सेवडे विप्र संन्यासी औ
दरवेष ये षट् दरशन हैं, अन्य स्पष्ट ॥ ३४॥ ३५॥ ३६॥

९९ अब तत्त्वविचारका महात्म्य कहे हैं:-

दोहा.

अनाथ श्रवन बहुते किये, कह्यो बहुत
परकार ॥ अब सुविचार विचार पुनि,
करन न परे विचार ॥ ३७॥ ॥

टीकाः- स्वामी अनाथदासजी कहे हैं:- बहुते
ग्रंथोका श्रवण कीया औ बहुत प्रकारसैं कथन कीया,
तथापि कृतकृत्यता न भई; अब सुष्टु तत्त्व विचारकूं-
विचारिके बहुत विचार करणा परे नहीं ॥ ३७॥

१०० अब अपनी नम्रता सूचन करतेहुये ग्रंथका
र, दो दोहोंकर कवियोसैं प्रार्थना करे हैं:-

दोहा.

छमा करो सिष जानके, हे कवि महा
प्रबुद्ध ॥ लेहु सुधार विचारके, अच्छ
र सुद्ध असुद्ध ॥ ३८ ॥ ॥

हौं अनाथ केतिक रू मति, वरनो माल विचार ॥ राम मया सत्गुरु दया, साधुसंग निरधार ॥ ३९॥ ॥

टीकाः- अर्थ स्पष्ट ॥ ३८॥ ३९॥

१०१ अब ग्रंथके रचणेमें हेतु कहे हैं :-

दोहा.

पुरी नरोत्तम मित्र वर, धरो अतिथि भगवान ॥ वरनी माल विचारमें, तिहि आज्ञा परमान ॥ ४०॥ ॥

टीकाः- अब परंपरासैं श्रुतकथा लिखे हैं :- अनाथदासजी औ नरोत्तमपुरी जो परस्पर स्नेहके वशतें विरक्त हुये साथ विचरते भये, कछु काल पीछे अदृष्ट वशतें वियुक्त हुये, अनाथदासजी काश्मीरमें प्राप्त भये औ नरोत्तमपुरी जी विचरते हुये गुजरात देशमें बडोदे नाम नगरमें प्रारब्ध वशतें राज्योंकर पूज्य होते भये, तब नरोत्तमपुरीजीनें विचार कीया, हमारे मित्र अनाथदासजी यद्यपि विरक्त हुये काश्मीरमें विचरे हैं, तथापि पूर्व संप्रदाय उक्त भेदवादके संस्कारतें अद्वैत निष्ठातें च्युत भये हैं वा अद्वैतमें निष्ठावान् हैं, या परीक्षाके अर्थ पत्रिका लिखके ताके समीप पहुंचाई। ता पत्रिकामें यह लिख्याः- परमेश्वर चिंतनअर्थ बहोत मोलवाली एक माला हमारे समीप भेजो । ताकों

पडके औ ताके अभिप्रायकूं जानके अनाथदासजीनें-यह विचारमाळा रची। सो कहे हैं:- नरोत्तम पुरी जो हमारे श्रेष्ठ मित्र हैं, पुनः कैसे हैं? एक परमेश्वर हीं अतिथिवत् भली प्रकार जिनका पूज्य है, ताकी आज्ञाका स्वीकार करके हमने यह विचारमाला नाम ग्रंथ रचा है ॥ ४०॥

१०२ अब या ग्रंथका महात्म्य कहे हैं:-

दोहा.

लिखे पढे अति प्रीतियुत, अरु पुनि करे बिचार ॥ छिन छिन ज्ञानप्रकास तिंहिं, होय स्रु रवि प्रकार ॥ ४१॥

टीका:- जो पुरुष या ग्रंथकूं लिखे औ प्रीतिपूर्वक गुरुमुखात् श्रवण करे तथा इकांतमें स्थित होयके विचारे, ता पुरुषकों प्रतिक्षण प्रकाशरूप ब्रह्मनिष्ठा दृढ होवे। जैसें उदयसें लेके मध्यान्ह पर्यंत प्रतिक्षण सूर्यका प्रकाश दृढ होवे है तैसें ॥ ४१॥

१०३ अब जिन ग्रंथोंका अर्थ संग्रहकर या ग्रंथमें लिख्या है, तिनके नाम कहे हैं:-

दोहा.

गीता भरथरिको मतो, एकादसकी युक्ति ॥ अष्टावक्र वसिष्ट मुनि, कछुक आपनी उक्ति ॥ ४२॥ ॥

टीका:-"कबहू न मन थिरता गई" औ "निह संशय मन है चपल" इत्यादि वाक्योंकर गीताउक्त अर्थ कहा। औ "नदि आशा" इत्यादि वाक्योंकर भरथरिका मत कहा। औ "अति कृपालु नहि द्रोह चित"-इत्यादि वाक्योंकर एकादशकी युक्ति कही। औ "विष वत विषय विसार" इत्यादि वचनोंकर अष्टावक्र उक्त अर्थ कहा। औ सप्तभूमिका औ प्रपंचका अपवाद प्रतिपादक वचनोकर वसिष्ट उक्त अर्थ कहा। इन वचनोंका संबंध प्रतिपादक कछु इक अपनी उक्ति है॥४२॥

१०४ सोरठा.

सत्रह सैं छब्बीस, संवत्त माधव मास शुभ॥ मो मति जितिक इतीस, ते तिक बरनी प्रगट करि॥४३॥ ॥

टीकाकारकी उक्ति:-

१०५ दोहा.

बालबोधिनी नाम यहि, करो सारथिक सोच॥ मूल सिंधुमों बिंदु सम, लिख्यो अरथ संकोच॥१॥ ॥

कह्यो जु किंचित अरथमैं, सो वेदांत को सार॥ भले विचारे याह जो, संसृति नसैं अपार॥२॥ ॥

संवत संसि गुन ग्रह ससी, गती अं-

क लिख वाम ॥ ज्येष्ठमास पषकृष्ण स्रुभ, तीज सोम सुखधाम ॥ ३॥ ॥

१०६ कवित्त.

मायिक प्रपंच मांहिं सिंधु नाम देस आहिं तामें साधुबेला नाम साधुजन गावहीं ॥ तासमें निवास करें ब्रह्मा-नंद माहिं चरें पालक प्रसाद हरि संत मन भावहीं ॥ संत जे समीप वसें तप कर तनु कसें इंद्रय मन रोक ध्यान ब्रह्ममें लगावहीं ॥ अष्टम विस्राम जोइ इति भयो तामें सोई लिख्यो आया रामदास गोविंद स्रुनावहीं ॥ ४॥ ॥ ॥

श्लोक.

गोविंददास रचिता, शुद्धा पीतांबरेण या ॥
सा बालबोधिनी टीका, सदा ध्येया मनीषिभिः॥१॥

इति श्रीविचारमालायां आत्मवान्‌की स्थिति वर्णनं नाम अष्टम विश्रामः समाप्तः ॥८॥

इति श्रीसटीका विचारमाला समाप्ता.

जाहेरखबर

	किंमत रु.
श्रीविचारमाला	॥।≈
भाषाटीकासहित श्रीपंचदशी	७
भाषाटीकासहित ईशादि अष्ट उपनिषद्	६
श्रीवृत्तिरत्नावलि सहित विचारसागर	२
श्रीविचारचंद्रोदय	॥
श्रीसुंदरविलास	१।
श्रीशंकरानंदी संस्कृतटीकासहित भगवद्गीता	५
अपरोक्षानुभूति संस्कृत टीका सहित	॥
वेदांतस्तोत्र भाग प्रथम	६-
” भाग दुसरा	६-
गुर्जर भाषांतर सहित श्रीपंचीकरण	१
गुर्जर भाषांतर सहित वेदस्तुति	॥-

श्रीमुंबैमें.

सा नारायणजी त्रिकमजीके पास फिरंगीके देवळके नजीक महाराज जयकृष्णजीवनरामके ग्रहमें.

पुजारा कानजी भीमजी वडगादी दरियास्थानमें.

पंडित ज्येष्ठाराम मुकुंदजी मुंबादेवीके पास.

डाकखर्च अधिक लगेगा.

मूळचंद्रशर्मीकृत पदार्थमंजुषा छपेगा किंमतरु. आ. ३ पी. ८